ISSN : 2278-7240

तुलसी मानस संस्थान की मुख पत्रिका

तुलसी सौरभ

शाश्वत संस्कृति एवं संस्कारों की संवाहक

वर्ष 11 अंक 2 जून – जुलाई, 2017

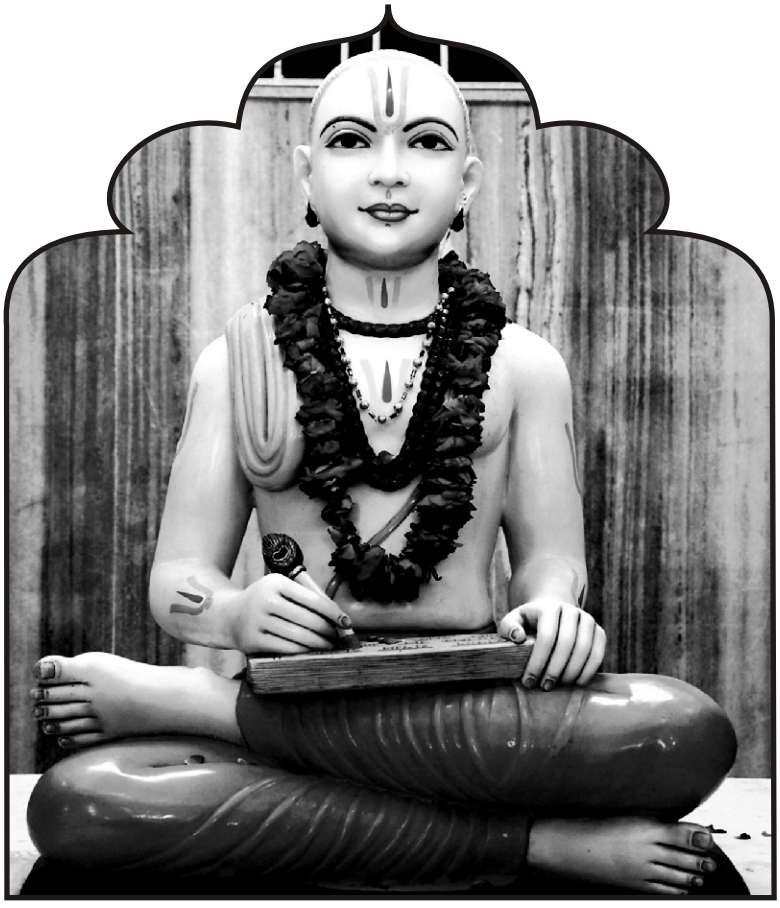

संत तुलसीदास

मैं अवध हूँ

सनातन कुमार वाजपेयी

मैं अवध हूँ ब्रह्म का प्रतिमान हूँ मैं।
मैं अवध हूँ राष्ट्र का अभिमान हूँ मैं।।

मैं अवध हूँ श्रीराम मेरी गोद खेले
मैं अवध भगवान का गुणगान हूँ मैं।। मैं अवध.

धर्म की संस्थापना मैंने कराई।
सत्य की भी ज्योति मैंने ही जलाई।।
पाप के संहार का दृढ़ मंत्र मैं ही,
ज्ञान का तूणीर अक्षय बाण हूँ मैं।। मैं अवध.

जब कभी भी गूँजती जग में व्यथायें।
शौर्य के संदेश से भरता दिशायें।।
भानुकुल कल कीर्ति की अनुपम पताका,
राजनय की नीति की पहिचान हूँ मैं।। मैं अवध.

पुण्य सरयू की सुपावन भक्ति धारा।
प्रेम का उत्कर्ष मैं ही ज्ञान सारा।।
सन्त जन की साधना का मैं सुफल हूँ,
मुक्ति का संदेश अमृत दान हूँ मैं।। मैं अवध.

राम के अगणित यहाँ है मठ सुहावन।
राम के प्रासाद के ही पथ सुपावन।।
पान कर वनवास विष, बाँटा अमिय है,
राम के रामत्व का अभियान हूँ मैं।। मैं अवध.

मैं व्यथित हूँ मत अधिक कटुता बढ़ाओ।
मिल सभी सौजन्य से मुझको सजाओ।।
विश्वमय बन्धुत्व का उद्घोष मैं ही
शान्ति, करुणा, प्रेम का अवदान हूँ मैं।। मै अवध.

पुराना कछपुरा स्कूल, गढ़ा
जबलपुर-482003 (म.प्र.)
मो : 9993566139

तुलसी सौरभ

द्विमासिक
हिन्दी सांस्कृतिक पत्रिका

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक :
रामलक्ष्मण गुप्त द्वारा
39, माथुर वैश्य नगर, टोंक रोड,
जयपुर-302 029 से प्रकाशित एवं
हरिहर प्रिन्टर्स
जे-97, अशोक चौक, आदर्श नगर,
जयपुर-302004 से मुद्रित
परामर्शदाता मण्डल :
देवर्षि पं. कलानाथ शास्त्री
डॉ. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'
श्री दामोदर भगेरिया
प्रधान सम्पादक
रामलक्ष्मण गुप्त
81, माथुर वैश्य नगर, टोंक रोड
जयपुर - 302 029
फोन : (घर) 0141-2550725
(मो.) 9414052831
डॉ. राम कृष्ण अग्रवाल, सह सम्पादक
104/119, मानसरोवर
जयपुर-302 020
(मो.) 9887090774

वार्षिक सदस्यता शुल्क :
रुपये 50.00 (पचास रुपये)
द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क :
रुपये 100.00 (सौ रुपये)
पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क :
रुपये 250.00 (दो सौ पचास)
एक प्रति 20.00 रुपये

चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर, तुलसी मानस संस्थान जयपुर के नाम भेजें या ओरियन्टल बैंक अकाउन्ट नं. 07762191006232 में जमा करें।

पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय.....

अमरनाथ यात्रियों पर आतंकवादी हमला हुआ। यह विशुद्ध धर्म यात्रा थी। तीर्थ यात्री 'बर्फानी बाबा' (भगवान शिव) के दर्शन करने जा रहे थे। ये सभी यात्री हिन्दू थे। हमलावर आतंकवादी इस्लाम के मानने वाले थे। हमला निश्चय ही इसलिए हुआ क्योंकि इस्लाम के अनुयायी आतंकवादियों को हिन्दू तीर्थयात्रियों से नफरत है, दुश्मनी है। जब कभी, जहां कहीं कोई ऐसा आतंकवादी हमला होता है और आतंकवादी पकड़े जाते हैं, वे सब मुसलमान ही होते हैं तो भी तथाकथित बुद्धिजीवी एवं धर्म निरपेक्षता के झंडावरदार एक स्वर में बोलते सुने जा सकते हैं ''यह इस्लाम के अनुयाइयों का काम नहीं है, यह तो अपराधियों का कृत्य है क्योंकि आतंकवादियों का कोई धर्म नहीं होता।'' विश्व में पिछली दो दशाब्दियों में जहां कहीं भी ऐसी आतंकवादी-विनाशकारी दुर्घटनायें घटित हुईं हैं तो बिना किसी अपवाद के सर्वत्र यही पाया गया है कि उनको अंजाम देने वाले सभी के सभी सब जगह मुसलमान ही थे। फिर ऐसी ज्यादातर वारदातों की जिम्मेदारी आगे बढ़कर कोई न कोई इस्लामिक आतंकी संगठन लेकर बड़े गर्व का अनुभव करता है। कुछ जीवित पकड़े गये आतंकियों ने जो कुछ बताया है वह चौंकाने वाला है। उनसे पता चला उन्हें बाकायदा ट्रेनिंग दी गई, ब्रेन-वाश किया गया, कुर्बान होने पर बागे बिहिश्त में 72 हूरें प्राप्त होंगी ऐसा बार-बार बताया गया। ब्रेन-वाशिंग में कहीं कुछ कमीं रह भी गई हो तो उसे आई एस आई एस की विश्व भर को 'दारुल इस्लाम'बनाने की घोषणा ने पूरा कर दिया। पिछले दशक में हमारे देश में भी सरकारी स्तर पर एक षड़यंत्र रचा गया। धर्मनिरपेक्षता के पक्षधरों ने सोचा सारी आँच इस्लाम ही की तरफ क्यों? कुछ तपन हिन्दू भी तो झेलों अत: हिन्दू आतंकवाद को पैदा कर दिया गया। कुछ निर्दोषों को हिन्दू आतंकवादी बना कर जेलों में डाल दिया गया। पर चाल निष्फल रही। यहाँ यह सब लिखकर हम यह कहना चाहते हैं कि हमारे यहाँ के बुद्धिजीवी, धर्मनिरपेक्षतावादी व मुसलमान बन्धु इस सत्य को स्वीकारें कि कुछ स्वार्थी शक्तियाँ मुस्लिम युवाओं को बहका कर आतंकी बना रही हैं। वे उन्हें मौत के मुँह में धकेल रहीं हैं। आप आगे आइये और इन भ्रमित युवाओं को सही मार्ग पर लाइए। यह कार्य अब केवल इस्लाम के अनुयायी ही कर सकेंगे हमारा ऐसा मानना है।

-रामलक्ष्मण गुप्त

मंगलाचरण

श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलं पद्मार्चितं पद्मया
पद्मस्थेन तु पद्मजेन विनुतं पद्माश्रयस्याप्तये।

यद्वेदैश्च नुतं सुरवैकनिलयं सर्वाश्रयं निष्क्रियं
शश्वच्छंकरशंकरं मुहुरहो सन्नौमि तल्लब्धये।।

भगवती पद्मालया कमलाने पद्मपुष्पों के द्वारा जिन रघुनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्र के पादपद्मों की अर्चना की तथा भगवान विष्णु के नाभिपद्म पर स्थित ब्रह्माजी ने भी भगवाती लक्ष्मी के कृपाकटाक्षकी प्राप्ति के लिये जिन पदपद्मों का स्तवन-वन्दन किया था, जिन चरणों की वेदों द्वारा भी निरन्तर स्तुति की जाती है और जो समस्त सुख एवं आनन्द के एकमात्र आश्रयस्थल हैं तथा समस्त प्राणिमात्र के लिये शरण हैं, जो कूटस्थस्वरूप हैं और जो समस्त कल्याण के स्वरूप भगवान् शंकर का भी नित्य कल्याण करने में समर्थ हैं, मैं परमतत्त्व की प्राप्ति के लिये उन पदद्वन्द्वों की बार-बार वन्दना करता हूँ।

तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौनाम यस्य प्रभोर्येनेदं
सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम्।

यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभुस्तं
वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम्।।

जिन भगवान् का नाम तीनों लोकों में संसार समुद्र से पार होने के लिए नौका रूप है, जिनसे उत्पन्न और पालित होकर यह सम्पूर्ण संसार सदैव शोभा पाता है, जो चैतन्य घनस्वरूप एवं प्रमाण से परे हैं, वेदान्त शास्त्र के द्वारा जानने के योग्य और सर्वत्र व्यापक हैं, उन सहज प्रकाशरूप निर्मल परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

1. जसु-अपजसु बिधि हाथ
डॉ. चन्द्रपाल शर्मा 3

2. रामचरित मानस में धर्म के स्वरूप
डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त 9

3. आध्यात्मिक विकास क्यों और कैसे?
स्व. नेत्रपाल गुप्ता 10

4. अभिशप्त पतिव्रता 'अहल्या'
राम भवन सिंह ठाकुर 12

5. मानस में काव्य-तत्वों के संकेत
शुकदेव शास्त्री 14

6. भारतीय संत परम्परा में नाथ संप्रदाय
शंकरलाल माहेश्वरी 18

7. 'सुत सोई करेहु इहइ उपदेसु'
बालकृष्ण कुमावत 20

8. मोह निशा सब सोवनि हारा
सनातन कुमार वाजपेयी 'सनातन' 23

9. अध्यात्म ज्ञान बनाम भक्ति
ओमप्रकाश मंजुल 25

10. समीक्षायण

पूर्णांगिनी डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' 29

इदं राष्ट्राय डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ 30

जिज्ञासा डॉ. सूर्य प्रसाद शुक्ल 31

11. पत्र प्रतिक्रियाएँ 34

◆ ◆ ◆

जसु-अपजसु बिधि हाथ

डॉ. चन्द्रपाल शर्मा

प्रातः समय-असमय एक पंक्ति लोग गुनगुना देते हैंः 'हानि लाभ जीवन मरन, जसु अपजसु बिधि हाथ।' वस्तुतः यह गोस्वामी तुलसीदास के महान् ग्रन्थ रामचरितमानस के एक दोहा का तीसरा-चौथा चरण है। अयोध्या में एक भूचाल आया था, अयोध्यावासी उसके प्रत्यक्षदर्शी थे किन्तु भरत-शत्रुघ्न ने भूचाल को नहीं देखा था। उन्होंने तो भूचाल के बाद विनाश का सामना किया और वह भी बिना किसी पूर्व-आभास के। अयोध्या आने तक दोनों भाइयों को अध्योध्या घटनाक्रम की जानकारी नहीं दी गई थी। ननिहाल में उनसे इतना कहा गया था कि गुरुजी ने तुरन्त बुलाया है। अयोध्या आने पर भी किसी ने कुछ नहीं बतायाः

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं।।

2-158

माता कैकेयी से कुशल समाचार यह मिला कि मंथरा के सहयोग से मैंने सब बात सँभाल ली है। हाँ थोड़ी गड़बड़ यह हो गई कि तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया है। पिता की मृत्यु के बाद राम-लक्ष्मण-सीता के बनवास की सूचना पाकर भरत, पुत्र की मर्यादा का भी उल्लंघन कर गए। अपनी माता को अत्यंत कटु बातें कहीं। यथाः-

बर मागत मन भई नहिं पीरा।
गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा।।

2-162

अपनी ही माता को नहीं, अपितु समस्त नारी-जगत को भी गाली सुना दीः-

बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी।
सकल कपट अघ अवगुन खानी।।

(वहीं)

माता कौसल्या के पास जाकर वे विलाप करते हुए अपने को कुलकलंक, अपयश-भाजन, भाग्यहीन, अनर्थकारी, धिक्कारयोग्य, पापभागी विशेषण देते हैं। भरत के मन में अपनी माँ के कुकृत्य के कारण भयंकर ग्लानि है और साथ ही यह डर भी है कि अयोध्या की जनता इस दुष्कृत्य में मेरी सहमति की आशंका भी कर सकती है। भरत विलाप कर रहे हैं। कौसल्या के समझाने पर भी शान्त नहीं हो पा रहे हैं। वे कहते हैं कि माता-पिता के हत्यारे, गऊशाला या ब्राह्मण के घर को जलाने वाले, नारी या बाल के वध करने वाले, मित्र या राजा को विष देने वाले आदि जितने पातक या उपपातक हैं, वे मुझे सभी लग जायें यदिः-

जौं यहु होइ मोर मत माता।

2-167

यदि राम को बन भेजने में मेरा तनिक भी योगदान हो, तो भगवान् शंकर मुझे वह गति दें जो वेद-बेचक, चुगलखोर, कपटी, कलहप्रिय, वेद-निंदक, संसार-विरोधी, लोभी, धूर्त, परद्रव्य व परस्त्री के इच्छुक, साधु-संग से विरक्त, परमार्थ से विमुख, नास्तिक, वाममार्गी, ठग, धोखेबाज आदि को मिलती हैः-

तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ।
जननी जौं यहु जानौं भेऊ।।

2-168

भरत ने इस मानसिक दशा में गुरु वसिष्ठ के आदेश का पालन करते हुए पिता का अन्तिम संस्कार किया। शुभ मुहूर्त में वसिष्ठ ने दोनों भाइयों को सभा में बुलाया। भरत को अपने पास बैठाकर राज्याभिषेक के निर्णय से लेकर दशरथ की मृत्यु का सब घटनाक्रम बताया।

भरत के लिए यह सब प्रामाणिक विवरण था। वे विह्वलावस्था में हैं और वसिष्ठ उनको

नवदायित्व ग्रहण करने के लिए कहनेवाले हैं। अतः भरत के मनोगत अवसाद को दूर करने व मनोबल को बढ़ाने के लिए बिलखते हुए ब्रह्मर्षि ने यह दोहा कहाः–

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।।

2–171

गोस्वामी जी ने वसिष्ठ मुनिनाथ विशेषण दिया है। वह सप्तर्षिमण्डल में से एक ऋषि भी हैं। अतः उनका कथन ऋषि–मुनि सम्मत है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस कथन में पूर्ववर्ती व परवर्ती घटित या घटित होने वाली सभी घटनाओं का संकेत कर दिया है। विद्वान लोग अभिधा में न कहकर व्यंजना में सब कुछ कह देते हैं। इस दोहे में छः बातों का उल्लेख है। इन छः के संदर्भ में अत्यंत संक्षेप में रामकथा का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

रामकथा में जिन पात्रों या स्थानों की हानि हुई है, उस हानि के लिए वे स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं। राजा दशरथ अपनी आयु को देखकर श्रीराम को उनका स्वाभाविक उत्तरदायित्व सौंपना चाहते हैं। समय या मुहूर्त पर मतभेद हो सकता है किन्तु राम इस पद के लिए योग्य भी हैं और उत्तराधिकार के नियमानुसार अधिकारी भी हैं। दशरथ के इस निर्णय से कुलगुरु वसिष्ठ प्रसन्न हैं और राजा को निर्देश देते हैंः–

बेगि बिलंब न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु।।

2–4

मंत्रीगण प्रसन्न हैंः–

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी।

2–5

सारा नगर आनन्दित हैः–

सुनत राम अभिषेक सुहावा।
बाज गहागह अवध बधावा।।

2–7

माताएँ प्रसन्न हैंः–

चौंके चारु सुमित्राँ पूरी।
मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी।।
आनँद मगन राम महतारी।
दिए दान बहु बिप्र हँकारी।।

2–8

सारा नगर आनन्दमग्न हैः–

राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि।।

(वही)

जिस कैकेयी के कारण सारा बखेड़ा हुआ, वह तो राम को मिलने वाले इस अवसर की सूचना से सबसे अधिक प्रसन्न है। वह अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहती हैः–

राम तिलकु जौं साचेहुँ काली।
देउँ मागु मन भावत आली।।

2–15

यहाँ तो समय अथवा मुहूर्त की भी पुष्टि हो गई। अब राजा–प्रजा, प्रशासन व समाज अयोध्या जिस लाभ को पाना चाहते हैं, वह हानि में किसने बदल दिया। क्या मन्थरा ने? मन्थरा तो एक सामान्य सेविका है, उसमें यह सामर्थ्य कहाँ से आ सकता है? अतः दैव या विधि का सहारा लिया गया। दोष देवताओं का, सहारा सरस्वती का। प्रार्थना की गई 'जाइअ अवध देव हित लागी' और सरस्वती मन्थरा को 'अजस पिटारी' बनाकर चली गई। अध्योध्यावासियों को लाभ के स्थान पर विधि ने हानि थमा दी। दशरथ अपने प्रिय पुत्र को युवराज के रूप में न देख सके और असमय मृत्यु आ गई, प्रजा राजा के बिन अनाथ हो गई। माण्डवी का पति चौदह वर्ष के लिए नंदिग्राम में एक झोंपड़ी में जा बैठा, उर्मिला का पति चौदह वर्ष के लिए राम–सीता की सेवा करने चला गया। युवराज बनने वाले को वन का राज्य मिला। 'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।' माताओं को असमय में वैधव्य मिला इन सबकी

हानि में इनका कोई हाथ नहीं है। यह विधाता की देन है।

रामकथा में हानि की अपेक्षा लाभार्थियों की संख्या बहुत अधिक है। श्रीराम परात्पर ब्रह्म के अवतार हैं, उनके हाथों मृत्यु पाने वाले भी मोक्ष प्राप्त करते हैं। अतः कुछ पात्रों ने उनके हाथों से मृत्यु पाने का सुअवसर जानबूझकर लिया है। रावण को शूर्पणखा एक समाचार देती है और रावण सोचता हैः–

खर दूषन मोहि सम बलवंता।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरु हठ करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

3-23

नाक-कान शूर्पणखा के कटे, मारे गए खर, दूषण, त्रिशिरा और शाप अथवा राक्षसत्व से छुटकारा पाया रावण व उसकी प्रजा ने। रावण तब तक नहीं मरता, जब तक उसके पूरे परिवार का उद्धार नहीं हो जाता। रावण अपार बल का स्वामी था। उसके तेज के सम्मुख अग्नि, चन्द्र, सूर्य सभी फीके थे, शेषनाग व कच्छप भी जिसके भार को सहन करने में असमर्थ थे, वरुण, कुबेर, इन्द्र, वायु भी युद्ध में जिसका मुकाबला नहीं कर सकते थे, जिसने काल पर विजय पाई हो, जिसका पुत्र इन्द्रजीत हो, वह पराजित हो जाये, तो यह उसकी हानि है किन्तु यह कैसी हानि जिसमें हारकर भी लाभ ही लाभ है। स्वयं रावण की पत्नी मंदोदरी इसे स्वीकार करती हैः–

तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं।
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि वृन्द दुर्लभ गति तोहि दीन्ह भगवान।।

6-104

लाभ की यह पराकाष्ठा है, यह भगवान् की अनुकम्पा है, विधि का विधान है। मारीच तो कपट कार्य कर रहा था, उसे मृत्युदण्ड मिलना स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु विधि का विधान देखिए, 'मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना' उसे राम ने इतना लाभ पहुँचा दिया जो उसने सोचा भी नहीं थाः–

निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबन्धु रघुनाथ।

3-27

केवट जैसे साधारण व्यक्ति को इससे बड़ा लाभ क्या मिलेगा कि अयोध्या नरेश के पुत्र भावी महाराज अपनी पत्नी व अनुज के साथ उससे प्रार्थना कर रहे हैंः–

जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।।
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा।
जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा।।

2-101

केवट जिस समय चरण पखार रहा है, उस समय देवतागण उसके बारे में क्या सोच रहे हैंः–

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।

(वही)

चित्रकूट के किरातों की तो घर बैठे ही किस्मत खुल गई। राम-लक्ष्मण-सीता का स्वागत करते हैं, मानो निर्धन जन सोना लूट रहे होंः–

कंदमूल फल भरि भरि दोना।
चले रंक जनु लूटन सोना।।

2-135

ये बनवासिन स्वयं अनुभव करते हैंः–

हम सब धन्य सहित परिवारा।
दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा।।

2-136

यह लाभ न किसी प्रयास से मिला है न पुण्यों के प्रताप से, अपितु विधाता की कृपा से प्राप्त हुआ है।

राम-लक्ष्मण से निषाद का परिचय कितना लाभकारी रहा है कि जो तत्कालीन सामाजिक परम्परानुसार-

लोक वेद सब भाँतहि नीचा।
जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता।
मिलत पुलक परिपूरित गाता।।

2-194

उस निषाद को भरत गले लगाते हैंः-

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ।।

2-193

भरत की माताएँ स्नेह से मिलती हैं, उसे लक्ष्मण के समान समझ आशीष देती हैंः-

जानि लखन सम देहिं असीसा।
जिअहु सुखी सय लाख बरीसा।।

2-196

इस निषाद के हाथ में हाथ डालकर भरत चले आ रहे हैं। यहाँ प्रेम की अपनत्व की पराकाष्ठा हैः-

चलो सखा कर सों कर जोरें।
सिथिल सरीरु सनेह न थोरें।।

2-198

यह लाभ विधाता की देन है। जनक ने सीता-स्वयंवर की सूचना अयोध्या तो नहीं भेजी थी। विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के निमित्त राम-लक्ष्मण को ले गए थे। वहीं विश्वामित्र ने सिय-स्वयंवर में चलने का निश्चय किया। जनक तो राम-लक्ष्मण को जानते तक नहीं थे। जनक के पूछने पर मुनि विश्वामित्र ने ही परिचय कराया थाः-

रघुकुल मनि दसरथ के जाए।
मम हित लागि नरेस पठाए।।

1-216

इससे बड़ा कौन सा लाभ होगा कि परमात्मा के अवतार अयोध्या नरेश के उत्तराधिकारी राम घर बैठे ही जामता बन गए। इतना ही नहीं दोनों भाइयों की चारों पुत्रियों को बिना प्रयास के वर मिल गए।

बालि की तो मानों लाटरी ही खुल गई। वह स्वयं स्वीकार करता है कि जिस अवसर को मुनि लोग अनेक जन्मों के प्रयास के बाद भी नहीं पा सकते हैं, वह मुझे अनायास ही मिल गया हैः-

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं।
अंत राम कहि पावत नाहीं।।

4-10

वह अपने लिए प्रत्येक जन्म में राम के चरणों में रहने और अंगद को अपनाने की प्रार्थना करता है। राम ने उसे अपने लोक में स्थान दियाः- 'राम बालि निज धाम पठावा।' यदि सुग्रीव को राजसिंहासन मिला तो हाथ के हाथ ही अंगद को युवरात्व पद मिल गयाः-

लछिमन तुरत बोलाए पुरजन विप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज।।

4-11

गौतम-पत्नी अहल्या शापित नारी है, पत्थर है, उसे विधाता की कृपा से शाप भी वरदान लगने लगा। उसे नवजीवन मिल गया और भगवान् के साक्षात् दर्शन हो गए, पति ने भी ससम्मान स्वीकार कर लिया। उसे जीवन और अन्य लाभ सब विधि के विधान से मिले हैं। अहल्या स्वयं स्वीकार करती हैः-

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना।।

1-211

दशरथ के लिए तो यज्ञ करते हाथ जलाना मुहावरा भी विधि के विधान के कारण हल्का पड़ा गया। उन्हें तो एक यज्ञ के विचार करने के कारण का दण्ड मृत्यु मिली। गुरु वसिष्ठ व मंत्रिपरिषद् की अनुमति लेकर राम को युवराज बनाने का निर्णय लिया था। तीनों रानी निर्णय से प्रसन्न थीं, प्रजा उत्साहित थी किन्तु विधि के हाथ ने ऐसा रोड़ा अटकाया कि दशरथ को मरण का वरण करना पड़ा। दशरथ की मृत्यु असमय में हुई।

सर्वप्रथम यदि हनुमान को लें तो, वे बनवासी राज्यच्युत सुग्रीव के मंत्री है। वे अपने स्वामी के

साथ ऋष्यमूक पर्वत पर शासक बालि से डरकर छिपे बैठे हैं। हनुमान ने जो अतिमानवीय कार्य किये हैं, वे उनको यशस्वी बनाते हैं, देवत्व प्रदान करते हैं, किन्तु राम से भेंट से पूर्व ये कार्य हनुमान ने क्यों नहीं किये? बालि के भय से अपने स्वामी को मुक्ति क्यों नहीं दिलायी? श्रीराम से भेंट के बाद ही इस शक्ति के आने का अर्थ है–राम की कृपा–शक्ति। हनुमान स्वयं भी अपनी शक्ति पर कभी गर्व नहीं करते, वे अपने को राम का सेवक मात्र मानते हैं। वस्तुतः हनुमान का जन्म ही रामकाज के लिए हुआ है, सुग्रीवकाज के लिए नहीं। जामवन्त हनुमान से कहते हैंः–

कवन सौं काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतरा।
सुनतहिं भयउ पर्वताकारा।।

4–30

आशय यह है कि हनुमान को यश राम के कारण विधाता से मिला। स्वयं राम अपने को हनुमान का ऋणी मानते हैं–

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।

5–32

अतः गोस्वामीजी को कहना पड़ाः–

हनुमान सम नहिं बड़भागी।

7–50

सुग्रीव तो दीनहीन है, राज्य और पत्नी से विहीन है, पत्नी दूसरे के वशवर्ती है, अपनी सुरक्षा की इतनी चिन्ता है कि पर्वत की गुफा में छिपा रहता है। पर्वत की ओर से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखता है। राम–लक्ष्मण को देखकर हनुमान को ब्राह्मण वेश में यह जानकारी करने के लिए भेजता है कि कहीं ये युवक बालि ने तो उसे मारने के लिए नहीं भेजे। यदि बालि के आदमी हैं, तो पर्वत छोड़कर भागने की योजना हैः–

पठए बालि होहिं मन मैला।
भागौं तुरत तजौं यह सैला।।

4–1

जिसे अपने या हनुमान के बल पर विश्वास नहीं है, वह सामान्य सा व्यक्ति सुग्रीव, रामसखा जैसा यशस्वी पद पा गया। शबरी तो स्वयं स्वीकार करती है कि वह निम्न जाति से सम्बन्धित है। उसके कथन देखेंः–

अधम जाति में जड़मति भारी।

3–35

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।।

(वही)

शबरी का सौभाग्य कि राम–लक्ष्मण के आतिथ्य का उसे अवसर मिल गया। अतिथि के आगमन पर शबरी नेः–

सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।
कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।

3–34

इस एक कार्य के कारण शबरी यशस्वी नारी बन गई। अभी पिछले दिनों एक दल विशेष के राजकुमार एक निर्धन स्त्री की झोंपड़ी में दो रोटी खा आए तो भारत के समस्त मीडिया में वह स्त्री व उसका घर चर्चा का विषय बन गया था। वह आधुनिक युग की यशस्वी शबरी है।

श्रीराम के तीनों छोटे भाइयों में राम के प्रति अपार स्नेह व आदर है। शत्रुघ्न को तो कवियों ने लेखनी का विषय ही नहीं बनाया अन्यथा चौदह वर्ष के उसके सुशासन का ही परिणाम रामराज्य है। लक्ष्मण ने अपना जीवन ही राम को समर्पित कर दिया। भरी जवानी में पत्नी को छोड़कर स्वेच्छा से वनगमन किया। चौदह वर्ष तक दिन रात राम–सीता की सेवा की। मेघनाद की शक्ति को अपने वक्ष पर लिया, सीता को वन में छोड़ आने के श्रीराम के

कठोरतम आदेश का पालन किया, अपने प्राणों की आहुति दी किन्तु दुर्भाग्य आदर्श भाई का पद नहीं मिला। भरत ने केवल चौदह वर्ष के लिए मिले राज्य को लेने से इनकार कर दिया और 'विधि हाथ' के कारण वह संसार का अनुपम भाई बन गया। श्रीराम ने अपने अनुज भरत को इतने प्रमाण–पत्र दिये हैं कि उसके सामने रामकथा का कोई भी पात्र नहीं टिक पाता है:–

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।

2–231

जौं न होत जग–जनम भरत को।
सकल धरम धुर धरनि धरत को।।

2–233

तीन काल तिभुअन मत मोरें।
पुन्यसिलोक तात तर तोरें।।

2–236

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार।।

(वही)

तनिक विचारिये, लक्ष्मण की तपस्या भरत के एक त्याग से कितनी पीछे रह गई। भरत को यह विधाता की कृपा का फल है।

अपयश भी विधि के विधान से ही मिलता है। राम के प्रति कैकेयी के प्रेम की चर्चा पीछे कर आए हैं, किन्तु भाग्य में अपयश लिखा था। परशुराम कितने ही बार अनेक क्षत्रिय राजाओं को पराजित करने के कारण यशस्वी ही नहीं अपितु आतंक के पर्याय बन गये थे किन्तु एक राजकुमार से अपमानित होकर अपयश के भागी हुए। सीता स्वयंवर में हजारों राजाओं को एक बालक के सम्मुख अपमानित होना पड़ा। नारद जैसे वीतराग मुनि को ऐसा झटका लगा कि उपहास का पात्र बने। अपनी विशालता, विस्तार व गम्भीरता के उपमान सागर को दीन होना पड़ा। अतः वसिष्ठ की उक्ति उपयुक्त तो है ही, साथ ही समस्त रामकथा की निचोड़ है।

सहयोग, सर्वोदयनगर, पिलखुआ
पिन– 245304

राम कथा

संसृति रोग सजीवन मूरी।
राम कथा गावहिं श्रुति सूरी।।

(उत्तर/129–2)

राम कथा संसृति (जन्म–मरण) रूपी रोग के (नाश के) लिये संजीवन जड़ी है, वेद और विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं।

हर व्यक्ति यह सोचता है कि मृत्यु हो जाने पर जीवन भर की निष्पत्ति तथा पुरुषार्थ के पश्चात् वह अनस्तित्व में अदृश हो जायेगा। तब वह किसी परमतत्व– अनन्त सत्ता का आश्रय टटोलता है। उसकी नैसर्गिक अभिलाषा होती है कि वह परम तत्व से तादात्म स्थापित करे, उसमें विलीन हो जाय। राम कथा में उसे ऐसा परम तत्व भगवान राम के रूप में प्राप्त हो जाता है।

रामचरित मानस में धर्म के स्वरूप

डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा' अर्थात् जिसके द्वारा लोक धारण किया जाता है अथवा जो लोक का अस्तित्व बनाये है, वह धर्म है। वस्तुतः 'धर्म' कानून, नियम या नैतिक मूल्य है। मनुस्मृति में धर्म के स्वरूप को इन दश लक्षणों से स्पष्ट किया गया है। यथा–

'धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

मनुस्मृति 6-92

और भी उल्लेख्य है। यथा–

'आचारः परमो धर्मः।' मनुस्मृति 1-108

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी सुकृति रामचरितमानस में 'धर्म' की प्रसंगानुसार सुस्पष्ट, सूक्ष्म, सरल, सुबोध एवं विशद व्याख्या की है। वैसे तो गोस्वामी जी ने व्यक्ति धर्म, पुत्र-धर्म, पिताधर्म, पति पत्नि-धर्म, वर्णधर्म, आश्रम धर्म, राजधर्म आदि सभी का गहन विवेचन किया है; तथापि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिये व्यष्टि और समष्टि रूप से कल्याणार्थ जो धर्म दर्शन प्रस्तुत किया है, वह पूर्णतः सांदर्भिक, प्रासंगिक एवं उपादेय है। गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत धर्म की सभी परिभाषायें मानव एवं मानव-समाज के परित्राण, स्थायित्व, अभ्युदय तथा कल्याण के लिये हैं।

धर्म का सांगोपांग स्वरूप के केवल एक ही 'सत्य' शब्द से अभिव्यक्त कर गोस्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि संसार के सभी धर्मों में सत्य ही श्रेष्ठ धर्म है। उसके समान कोई भी धर्म नहीं है। यथा–

धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।

रा.च.मा. 2-94-5

सत्य या सदाचरण ऐसा धर्म है, जो त्रितापों से दूर कर इहलोक और परलोक में शाश्वत शान्ति प्रदान करता है तथा अजरामर यशस्विता देता है। यह सत्य धर्म सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने व्यावहारिक धर्म का निरुपण करते हुये परहित के समान अन्य धर्म को मान्यता प्रदान नहीं की। उन्होंने लिखा है कि–

परहित सरिस धर्म नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

रा.च.मा. 7-40-1

सम्बन्धों की प्रगाढ़ता और शाश्वत स्थायित्व के लिये 'परहित' परम पुनीत प्रभावी भावात्मक क्रिया है, जो एक दूसरे को सुबन्धित कर सौहार्द का आह्लाद प्रदान करने में सक्षम है।

धर्म के स्वरूप को गुणों के रूप में भी गोस्वामी जी ने परिभाषित किया है। उन्होंने दया गुण को अद्वितीय धर्म-गुण मान्य करते हुये उल्लेखित किया है कि–

धर्म कि दया सरिस हरि जाना। रा.च.मा. 9-11-10

अर्थात–दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है? 'करुणा' ईश्वर या परमात्मा की अन्तरात्मा का विशेष धर्म गुण के रूप में सर्वमान्य है। अस्तु दया के समक्ष अन्य गुण नगण्य है।

श्रुति का प्रमाण देते हुए गोस्वामी तुलसी दास जी ने मानवीय जीवन के श्रेय के लिये 'अहिंसा' को परम धर्म की संज्ञा प्रदान करते हुये स्पष्ट किया है कि–

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। 7-120 ख-22

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानव और मानवता के संरक्षणार्थ 'धर्म' के उपर्युक्त विविध आयामों को मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत कर मनुष्य मात्र के लिये एक सही दिशा एवं सन्मार्ग प्रशस्त करने का जो उपक्रम किया है, वह परम श्लाघनीय एवं समग्र रूप से लोकोपकारी है, अतएव गोस्वामी जी का धर्म विषयक उपर्युक्त चिन्तन अनुकरणीय एवं आचरणीय है।

श्रीमती लक्ष्मी गुप्ता भवन,
उद्योग विभाग के पास, सिविल लाइंस,
दतिया (म.प्र.)- 475661
मोः 9826249448

आध्यात्मिक विकास क्यों और कैसे?

स्व. नेत्रपाल गुप्ता

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अपना देश उन्नति कर रहा है। लगभग हर क्षेत्र में समृद्धतर होता जा रहा है। इन योजनाओं के पूर्ण हो जाने पर सम्भव है भूख प्यास की समस्या न रहे। भूख प्यास की समस्या हल करने के ये प्रयास प्रशंसनीय है। वास्तव में यह बहुत बड़ा कार्य होगा।

सम्भवतः हमने यह कल्पना कर ली है कि भूख प्यास की समस्या समाप्त हो जाने पर अन्य समस्त समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जायेंगी। भौतिक प्रगति के साथ आध्यात्मिक प्रगति स्वतः हो जायेगी। आध्यात्मिक विकास के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ेगा।

हमने कार, हैलीकॉप्टर एवं नाना प्रकार के अन्य असाधारण साधन प्राप्त कर लिए। परन्तु कार का उपयोग हमें दूसरों को लूटने, आतंकित करने के लिए करने लगें, हैलीकॉप्टर का उपयोग बोम्ब बरसाने के लिए करने लगें, रासायनिक तथा आणविक ऊर्जा द्वारा संसार को भस्म करने लगें तो यह प्रगति किस काम की? क्या यह प्रगति वास्तव में प्रगति है भी? हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जैसे-जैसे हम समृद्ध होते जा रहे हैं वैसे-वैसे अनाचार और भ्रष्टाचार बढ़ रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि भूखा, प्यासा व्यक्ति झूठा, बेईमान तथा भ्रष्ट हो सकता है परन्तु भूख प्यास मिट जाने पर भी वह ऐसा ही बना रहे तो समस्या भयंकर हो जाती है। आज संसार में भ्रष्टाचार तथा व्यभिचार उन लोगों द्वारा नहीं फैल रहे जो अभाव का जीवन जीते हैं, भूखे नंगे हैं अपितु उनके द्वारा फैल रहे हैं जिनके पास अतुल सम्पत्ति है, जो सर्व समर्थ हैं। अपने देश में आजादी से पूर्व लोगों के पास खाने-पहनने को आज की अपेक्षा कहीं कम था परन्तु उस समय अनाचार, भ्रष्टाचार आज की अपेक्षा कहीं सीमित था।

भौतिक प्रगति का अर्थ है- प्रकृति पर विजय। ऐसा भौतिकवादियों का विचार है। इसी के अन्तर्गत आज हम बड़े गर्व से कहते हैं कि विज्ञान तथा टैक्नोलॉजी के द्वारा बड़े आश्चर्यजनक आविष्कार हो रहे हैं। दुनिया बहुत छोटी हो गई है, दूरियाँ सिमट रही हैं। परन्तु क्या हम यह नहीं देख रहे कि मनुष्य से मनुष्य की दूरी किस द्रुत गति से बढ़ रही है।

अब जमी से आसमां की दूरियां घटती गईं
आदमी से आदमी का फासला बढ़ता गया।

रेडियो तथा टेलीविजन के माध्यम से आज मानव हजारों मील दूर की आवाज सुन सकता है परन्तु उसे अपनी पड़ौसी का क्रन्दन सुनाई नहीं पड़ता।

औद्योगीकरण के प्रति हमारी अन्धभक्ति बढ़ी और हमने एक-एक पेड़ निर्दयतापूर्वक काट डाला, वन सम्पदा नष्ट कर दी। परिणाम हुआ प्रकृति का प्रकोप। जलवायु स्वास्थ्य विनाशक हो गया तथा ऋतुओं का सामान्यचक्र जाता रहा। खनिज सम्पदा नष्ट होने से धरती खोखली हो गई, उसने मानव को खोखला कर दिया। प्रदूषण के विस्तार में सबसे बड़ा भाग औद्योगीकरण का है। जल तथा वायु सबसे अधिक विषाक्त इसी कारण हो रहे हैं।

औद्योगीकरण से कलयुग, मशीनयुग आया, मशीनीकरण की जय-जयकार होने लगी। उत्पादन श्रम सापेक्ष न रहकर धन सापेक्ष हो गया और सम्पत्ति वितरण के मान बदल गये। मानवीय मूल्यों की उपेक्षा तथा सम्पत्ति की अपेक्षा होने लगी। हर व्यक्ति यह सोचने के लिए विवश हो गया कि वह बिना मशीन के अपंग है, असहाय है। व्यक्ति के अचेतन मन में हीनता की ग्रन्थियों का निर्माण होने लगा और हीन भावना पनपने लगी। वह स्वयं-मशीन बन गया और मशीनों ने स्वामित्व ग्रहण कर लिया। दूसरी ओर औद्योगीकरण के फलस्वरूप विपुल सम्पत्ति सम्पन्न लोग अत्यधिक विलासी हो गये। आध्यात्मिकता से रहित ये लोग क्रूर तथा स्वार्थी बन गये। इन्होंने असत्य तथा भ्रष्टाचार को भी उद्योग बना दिया। ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण बढ़ा नैतिक पतन भी बढ़ता गया। सबसे भयंकर, दुष्परिणाम यह हो गया कि सभ्यता का मापदण्ड मानवमूल्यों से विस्थापित होकर भौतिक तथा आर्थिक उपलब्धियाँ हो गया।

'प्रकृति पर विजय' के अन्तर्गत ही आज प्रकृति का मनमाना दोहन हो रहा है। विकास की गति तीव्र हो, इसलिए प्राकृतिक सम्पदा का क्षरण द्रुत गति से हो रहा है। खनिज दोहन, वृक्ष कटान, शस्यश्यामला धरती पर वनों का विनाश तथा उर्वरता की हानि, पशु-पक्षी नाश तथा आणविक ऊर्जा सम्बन्धी प्रयोग इसी परिप्रेक्ष्य में किये जा रहे है। परन्तु हम यह भूल गये है कि 'प्रकृति पर विजय' केवल गर्वोक्ति है, दम्भ मात्र है। प्रकृति पर विजय की ही नहीं जा सकती क्योंकि प्रकृति जीव की भाँति परम तत्व है। प्रकृति तो हमारी सहापेक्षी है, सहचरी है। अब तीव्र गति से विकास के भ्रम में यह जो कुछ हो रहा है वह विकास न होकर अनिष्ट की चेतावनी है।

आध्यात्मिक विकास के अभाव में हम यह समझ ही न पाये कि प्रकृति स्वभावतः संतुलन बनाये रखती है। जैसे मनुष्य जब अपना आपा खो देता है तो काम क्रोध आदि विकार उस पर चढ़ बैठते हैं और आंतरिक दुर्बलताओं के कारण वह विनाशक गतिविधियों में लिप्त हो जाता है वैसे ही प्रकृति का संतुलन नष्ट कर देने के कारण प्रकृति आज अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर रही है। प्रदूषण इसी का परिणाम है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण हमारे प्राण ले रहे है। मिट्टी प्रदूषण ने धरती की उर्वरता छीन ली, उसकी पूर्ति कीटनाशक औषधियों से की जा रही है। इन कृमिनाशक औषधियों ने अन्न, फल, वनस्पति और अन्ततः मानव का स्वभाव ही बदल दिया है। इन प्रदूषणों ने हमारे मन, वचन तथा कर्म ही दूषित कर दिये हैं।

यह सब इस लिये हो रहा है कि हमने आध्यात्मिक विकास को न कोई महत्व दिया, न कोई योजना बनाई। हमने मानव को शरीर मात्र मान रखा है इसलिए केवल भौतिक विकास की ही बात करते हैं। परन्तु मानव मन, बुद्धि तथा आत्मा भी है। आत्मिक विकास के बिना वास्तविक विकास सम्भव नहीं है। शान्ति, प्रेम, सद्भाव, सहानुभूति तथा साम्य का स्त्रोत आत्म तत्व है। वास्तविक विकास के लिए भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों पक्षों का विकास अनिवार्य है। एक भी पक्ष यदि अनुन्नत तथा अविकसित रह गया तो दूसरे पक्ष के विकास की योजनाएँ रुग्ण ही रहेगी। अतः यदि हम सम्पूर्ण मानव का निर्माण करना चाहते हैं तो आध्यात्मिक विकास के लिए भी प्रयास करना पड़ेगा, योजना बनानी पड़ेगी अन्यथा भौतिक प्रगति भी धराशायी हो जायेगी।

तुम्हारी तहज़ीब खुद अपने खंजर से
आप ही खुदकुशी करेगी
जो शाख़े नाजुक पै आशियाना
बनेगा नापायेदार होगा।

(इक़बाल)

आत्म विकास कैसे हो? महर्षि पतंजलि ने अध्यात्मवाद के पाँच तत्वों की घोषणा 'योगदर्शन' में कर रखी है। इन पाँच तत्वों अथवा कसौटियों पर खरा उतरने पर आत्म तत्व स्वतः विकास के मार्ग पर चल पड़ता है। इन पाँचों तत्वों को आत्मसात कर लेना ही आध्यत्मिक विकास है। क्या है ये पाँच तत्व?

अहिंसासत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः

महर्षि ने योगदर्शन में जिन यम नियम के दस साधनों का वर्णन किया है उनमें ये पाँच तत्व हैः-

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।

(पाँच नियम है शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान) सरमन ऑन दी माउंट (Sermon on the mount) में भी हेरफेर के साथ लगभग यही यम नियम है। हिंसा अहिंसा पर, असत्य सत्य पर, स्तेय अस्तेय पर, अब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य पर तथा परिग्रह अपरिग्रह पर चढ़ बैठने के कितने ही प्रयास करें ये पाँचों अदृश्य हो नहीं सकते। जितने अधिक ये तत्व दबाये जाते हैं उतने ही अधिक ये प्रकाशित होते हैं। ये तो प्रकाश स्तंभ है। भौतिकवाद इनके आगे सिर झुकाता है। इन तत्वों से ही 'जीना और जीने देना' और यदि आवश्यकता पड़े तो दूसरों के लिए अपने जीवन का बलिदान कर देना, सत्यपरता, 'लेने के स्थान देना' तथा 'अल्प से महान बनना' सीखा जा सकता है।

नोट : (नेत्रपालजी 'तुलसी सौरभ' के लिए बराबर लिखते रहते थे। तुलसी मानस संस्थान ने उनके द्वारा रचित 10 पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अभी तीन माह पूर्व उनका देहान्त हो गया।)

अभिशप्त पतिव्रता 'अहल्या'

राम भवन सिंह ठाकुर

गौतम ऋषि पत्नी अहल्या अतीव रूपलावण्यमयी, धर्मपरायण, सदाचारिणी, सहनशीला, पतिव्रता, विदुषी नारी थी। ब्रह्मा जी ने इस सुन्दरी को उत्पन्न कर गौतम ऋषि के पास धरोहर के रूप में रख छोड़ा था। कुछ दिन बाद जब वे गौतम–आश्रम आये और कन्या को ज्यों का त्यों पाया, तो ऋषि के सात्विक आचार–विचार से प्रसन्न होकर उसे ऋषि को ब्याह दिया। अहल्या भी सात्विक वृत्ति की थी। वह अपने नारी–धर्म का पालन करती हुई, ऋषि–पत्नी के गौरव से अभिभूत हो व्रत, उपवास, पूजन–अर्चन–वन्दन, धर्म–कर्म में सलग्न रहती। तन–मन से पति सेवा करती। उसके सद्गुणों, सत्कर्मों तथा पतिव्रता होने के कारण ही उसे उन पंच कन्याओं में गिना जाता है, जिनके नित्य स्मरण से समस्त महापाप नष्ट हो जाते हैं।

अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मन्दोदरी तथा।
पंच कन्याः स्मरेन्नित्यं महापातक नाशनम्।।''

ब्रह्म–कन्या अहल्या के रूप–सौन्दर्य से मोहित इन्द्र आदि देवता उसे वरण करने की लालसा लगाये हुये थे, परन्तु गौतम ऋषि से परिणय होते ही वे कुण्ठित हो उठे थे। इसी कुण्ठा से ग्रस्त इन्द्रराज, चन्द्रदेव के सहयोग से अहल्या के शीलहरण की योजना बनाते हैं। एक दिन रात्रि के तीसरे पहर में ऋषि–आश्रम में चन्द्रदेव मुर्गे का रूप धारणकर बांग देते हैं, जिससे गौतम ऋषि शैय्या त्यागकर गंगा स्नान को चल देते हैं। रास्ते मं उन्हें एक गाय आते हुए मिलती है, वही इन्द्र रूप आश्रम के निकट आकर गौतक ऋषि का वेश धारण कर कुटिया में प्रवेश करता है एवं अहल्या को प्रणय हेतु प्रेरित करता है। वह कहती हैः– ''हे ऋषि! ज्ञानी आज आपको क्या हो गया है! आप तो गंगा स्नान को निकल गये थे, फिर कैसे लौट आये। मुर्गा बांग दे चुका है। अतः ब्रह्म काल में आपके मन में यह कैसी काम वासना जागी है। रति विहार के लिए उचित समय नहीं है। मुनि वेशधारी इन्द्र कहता है कि रति इच्छा करने वाले ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते। उसी समय गंगा मैया के सचेत करने पर गौतम ऋषि दौड़े चले आते हैं, उन्हें देखते ही इन्द्र, चन्द्र स्तब्ध रह जाते हैं एवं अपने असली रूप में शीश झुकाये खड़े रहते हैं।

ऋषि इन्द्रराज के इस छलावे से कुपित होकर उसके शरीर में सहस्त्र भग होने एवं चन्द्रदेव के सहयोगी होने से 'क्षयी' होने, गाय को भिष्टा भक्षण, मुर्गे को शूद्र के घर निवास होने तथा अहल्या को अन्जान बन सहभागिनी जान शिला होने का शाप देते हैं।

इन्द्र एवं चन्द्र के बहुत क्षमा–याचना करने पर ऋषि इन्द्र को सहस्त्रलोचन होने एवं चन्द्र को पूर्णतः घटने के बाद पुनः बढ़ने के रूप में शाप परिष्कृत कर देते हैं। अहल्या अनुनय, विनय करती हुई कहती हैः– ''हे मुनिवर! इसमें मेरा क्या दोष है! मैं तो छली गई हूँ। अपराध करने वालों को अल्प दण्ड और सहज मुक्ति तथा मुझ निर अपराधिन को इतनी कठोर सजा। जब आप जैसे तपोनिष्ठ ज्ञानी भ्रमित हो गये, तो फिर मुझ जैसी अज्ञानी, निरीह अबला का भ्रमित होना स्वाभाविक है। भ्रम निवारण होने पर गौतम ऋषि कहते हैं कि शाप तो टल नहीं सकता, परन्तु तुम्हारा उद्धार त्रेता युग में श्रीराम के चरणकमलों के स्पर्श से होगा। श्रापवश वह शिला देह धारण कर, प्रभु चरणकमलों के ध्यान में लीन हो जाती है।

विश्वामित्र-आश्रम से धनुष यज्ञ में जनकपुर जाते समय रास्ते में एक निर्जन आश्रम एवं सुन्दर शिला को देखकर श्रीराम विश्वामित्र जी से उसके सम्बन्ध में पूछते हैं। मुनि विस्तार से कथा कहते हुए कहते हैंः-

गौतम नारि श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुवीर।।

भक्त वत्सल श्रीराम के दुःखहारी पावन चरणों के स्पर्श होते ही तपोमूर्ति अहल्या अपने पूर्वरूप में प्रकट हो जाती है एवं श्रीराम को सम्मुख देखकर रोमांचित हो उठती है, दोनों हाथ जोड़कर प्रेम विह्वल अहल्या-प्रभु चरणों में लोट जाती है, उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह उठती है, फिर वह मन में धैर्य धारण कर, निर्मल वाणी से स्तुति करती हुई कहती हैः- हे! ज्ञान से जानने योग्य श्रीरामजी, आपकी जय हो! मैं एक अपावन स्त्री हूँ और आप जगत् को पावन करने वाले भक्तों को सुख देने वाले हैं। हे कमलनयन! संसार के भय को दूर करने वाले! मैं आपकी शरण हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।

अहल्या कहती हैः- ''हे प्रभु! मुनि ने जो श्राप दिया सो अच्छा ही किया। मैंने उसे बड़ी कृपा ही समझी, क्योंकि इसी कारण से भवसागर तारनहार श्री हरि के नेत्रभर दर्शन सुलभ हो गये। इसी को शिवजी भी सबसे बड़ा जीवन लाभ मानते हैं।'' ''हे नाथ! मैं वर नहीं माँगती, केवल यही चाहती हूँ कि आपके चरणकमलों की रज के रस को मेरा-भ्रमर पान करता रहे।

''हे प्रभु! जिन चरणों से परम पावन गंगा जी उत्पन्न हुई, जिन्हें शिव जी ने अपने सिर पर धारण किया और जिन्हें ब्रह्मा जी नित पूजते हैं। हे कृपालु! वे चरण आपने मेरे सिर पर रखे।'' इस प्रकार स्तुति कर प्रभु पद अनुरागिनी अहल्या बारम्बार प्रभु के चरणों में गिरती है एवं मनवांछित वरदान पाकर, आनन्द विभोर हो पतिलोक को चली जाती है।

यहि भाँति सिधारी, गौतम नारी,
बार-बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा, सो वर पावा,
गइ पति लोक अनंद भरी।।

अभिशप्त एवं संतप्त होते हुए भी अहल्या ने अपना धैर्य नहीं त्यागा एवं पति को परमेश्वर मानते हुए उनके द्वारा श्रापित होने पर भी अन्त में पतिलोक जाने का वरदान माँगा। वह प्रभु का सान्निध्य, शुभाशीष एवं पावन भक्ति का प्रसाद पाकर धन्य हो गई एवं लोक वन्दनीय बन गई।

सदाचारिणी, पतिव्रता अहल्या का जीवन चरित्र पुरुष प्रधान समाज में नारी के शोषित, निरीह, अभिशप्त, संतप्त जीवन का दिग्दर्शन कराता है। समर्थ, छद्मवेषी, दरिंदे, छली, इन्द्र भोली-भाली अबलाओं को छलकर, उनके सतीत्व को कलंकित कर साफ-साफ बच जाते हैं एवं निर्दोष होते हुए भी महिलाएँ ही पिसती हैं, कलंक का टीका उनके ही माथे लगता है, घर-परिवार, समाज से बहिष्कृत होकर दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हो जाती हैं। आज भी अहल्या की भाँति शिला बनी नारी न्याय सिन्धु श्रीराम की मूक प्रतीक्षा कर रही हैं।

एक अहल्या नहीं अरे यह,
लाखों की है करुण कथा।
जिधर उठाकर नजर देखते,
वहीं सिसकती खड़ी व्यथा।।
दया नहीं या भीख नहीं कुछ,
केवल उसको न्याय चाहिए।
जीवन के अस्तित्व हेतु बस,
समता का अधिकार चाहिए।।

'रामाश्रम'
महाराज बाग, भैरोगंज, सिवनी
सिवनी (म.प्र.)-480661

मानस में काव्य-तत्वों के संकेत

शुकदेव शास्त्री

गोस्वामी तुलसीदास महाकवि थे और उनका रामचरितमानस महाकाव्य है। महाकाव्य की या काव्य की कुछ विशेषतायें होती हैं, जो उन्हें अन्य सामान्य रचनाओं से पृथक करती हैं। वाणी और अर्थ का सामान्य संयोग वाङ्मय कहा जाता हैं। किन्तु उसमें जब कुछ विशिष्ट तत्व समाहित हो जाते हैं, जो शब्द और अर्थ दोनों से सम्बन्धित होते हैं, सामान्य रचना को काव्य बना देते हैं।

रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही गोस्वामी जी उन तत्वों का उल्लेख कर देते हैं जिनसे काव्य की सृष्टि होती हैं। बालकाण्ड का निम्नांकित श्लोक ही प्रतिपादित करता हैं कि काव्य के आवश्यक अंग के रूप में वर्ण, अर्थ, रस, छन्द और मंगल (उद्देश्य) का होना आवश्यक होता हैं।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

।।1।। बालकाण्ड

किसी भी भाषा की लघुतम इकाई वर्ण होती हैं, जो सार्थक होती हैं। अन्यथा अर्थहीन ध्वनि भाषा में प्रयुक्त नहीं होती। यहाँ यह उल्लेखनीय हैं कि ध्वनि और वर्ण कुछ अंश तक समानार्थक है। किन्तु वर्ण सार्थक ध्वनि को कहते हैं। इस तरह वर्ण और अर्थ का परस्पर अनिवार्य सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों का मतभेद हैं, किन्तु सर्वमान्य अवधारणा यह है कि इन दोनों का अभेद सम्बन्ध होता हैं। महाकवि कालिदास ने भी शब्द और अर्थ को आपस में उसी तरह मिले हुये प्रतिपादित किया हैं, जिस तरह शिव और पार्वती मिले हुये होते हैं- जैसा कि निम्नांकित श्लोक हैः-

वागर्थाविव संम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।

इसी श्लोक का भावानुवाद करते हुये गोस्वामी तुलसीदास अपने दोहे में कहते है कि लोग वाणी और अर्थ को उसी तरह भिन्न कह देते हैं, जिस तरह जल और तरंग भिन्न कहे जाते हैं। किन्तु वास्तव में ये भिन्न नहीं होते, जिस प्रकार राम और सीता अभिन्न हैं-

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बदंउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।

।।18।। बालकाण्ड

यही कारण है कि पूर्वोक्त श्लोक में वर्ण पद के तुरन्त बाद अर्थसंघ पद का प्रयोग किया गया है। तात्पर्य यह है कि अर्थ समन्वित वर्ण ही भाषा के सफल प्रयोग के कारक होते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास समस्त वंदनीयों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के बाद चौपाई के माध्यम से भी काव्य-तत्वों का संकेत करते है कि अक्षर, अर्थ, अलंकार, छन्द और प्रबन्ध अनेक प्रकार के होते हैं इसी प्रकार भाव के रसों के अनेक भेद होते हैं तथा कविता के विभिन्न प्रकार के दोष होते हैं और गुण भी होते हैं। किन्तु कविता के तत्वों के बारे मेरा कुछ भी विवेक-ज्ञान नहीं हैं। मैं तो केवल कोरा कागज लिख रहा हूँ।

आखर अरथ अलंकृति नाना।
छंद प्रबंध अनेक बिधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।।

यहाँ हम संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे कि वर्ण दो प्रकार के होते हैं- स्वर और व्यंजन। स्वर के भी तीन भेद होते हैं-हस्व, दीर्घ एवं लुप्त। इनके भी

दो भेद होते हैः- अनुनासिक और निरनुनासिक। उच्चारणप्रक्रिया के अनुसार उदात्त, अनुदात और स्वरित तीन भेद होते है। इस प्रकार एक अ वर्ण के 18 भेद हो जाते हैं, किन्तु कुछ वर्ण के 12 भेद ही होते हैं। व्यंजन के भी कई भेद है, जो क वर्ग से प्रारम्भ होते है। इसी प्रकार भाव के भी अनेक भेद हैं, जो रस से सम्बन्धित होते हैं और वे हैं- विभाव अनुभाव और संचारी भाव आदि। सभी जानते हैं कि रस 9 प्रकार के होते हैं- श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। कुछ विद्वान् वात्सल्य और भक्ति को जोड़कर 11 रस मानते हैं। काव्य के अनिवार्य तत्व के रूप में अलंकार का भी स्थान है, जो तीन प्रकार के माने जाते है-अर्थालंकार, शब्दालंकार और उभयालंकार। इनके अनेक भेद है। पद्य रचना में छन्दों की अनिवार्यता होती है। इसके भी मुख्य दो भेद होते है-मात्रिक छन्द और वार्णिक छन्द। इनके भी अनेक उपभेद है। काव्यरचना के आकार और विषयवस्तु के अनुसार भी अनेक भेद होते है जो प्रबन्ध के भेद कहे जाते हैं। इसी प्रकार काव्य के कुछ गुण और दोष भी विद्वानों ने गिनाये हैं। मुख्य रूप से तीन गुण माने गये हैं-माधुर्य, ओज और प्रसाद। इसी प्रकार दोष भी अनेक हैं। संस्कृत के साहित्यशास्त्र में इनका विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। गोस्वामी तुलसीदास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और पूर्वोक्त उल्लेख से इनकी विद्वता का संकेत मिलता है। तथापि वे विनम्रता दिखलाते हुये कहते हैं कि उनको इन सबका ज्ञान नहीं हैं।

वे आगे कहते हैं कि यद्यपि मेरी कविता में एक भी रस नहीं हैं, तथापि इसमें राम के प्रताप का वर्णन है और इसी विश्वास से मैं लिख रहा हूँ क्योंकि सुसंग से किसको बडप्पन नहीं मिलताः-

जदपि कबित रस एकउ नाहीं।
राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।।
सोइ भरोस मोरे मन आवा।
केहि न सुसंग बडप्पनु पावा।।

वे आगे कहते हैं कि भले ही मेरी वाणी दोषपूर्ण हो, इसमें वर्णित वस्तु श्रेष्ठ हैं और वह जगत का कल्याण करने वाली रामकथा है। इस तरह गोस्वामी तुलसीदास ने प्रकारान्तर से अपनी काव्यरचना के उद्देश्य का भी उल्लेख कर दिया है कि वह मंगलकारक है।

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी।
राम कथा जग मंगल करनी।

यहाँ उल्लेखनीय हैं, कि काव्यशास्त्रियों ने काव्य के अनेक प्रयोजन बताये हैं जैसे अर्थोपार्जन, व्यावहारिक ज्ञान, अमंगल का नाश, दुख का तात्कालिक लोप और पत्नी के समान उपदेश की प्राप्ति। इनमें निश्चय ही कल्याण या मंगल की प्रधानता है और गोस्वामी जी ने अपनी रामकथा का प्रयोजन मंगल बताया है। वे आगे कहते हैं कि वही कीर्ति कविता और सम्पति अच्छी है, जो गंगा के समान सबका उपकार करने वाली हो

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होइ।।

इस प्रकार गोस्वामीजी पहले काव्य के सामान्य तत्वों का उल्लेख मात्र करते हैं और विनम्रता प्रकट करते हुये अपनी अयोग्यता तथा रामकथा की महत्ता का उल्लेख करते है। किन्तु आगे रामचरितमानस के नामकरण और उसकी सार्थकता को प्रतिपादित करते हैं

रामचरितमानस यहि नामा।
सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा।।
रामचरितमानस मुनि भावन।
बिरचेउ सम्भु सुहावन पावन।।
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन।
कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन।।

फिर मानस और अपनी रामकथा का सांगरूपक प्रस्तुत करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कहें कि मानसरोवर तडाग और रामकथा में क्या तुलना है, इसका विस्तृत विवेचन करते हैं। वहीं पर वे विस्तारपूर्वक ये भी बताते हैं कि उनके रामचरितमानस में काव्य के क्या विभिन्न तत्व उपलब्ध हैं।

हिमालय की उपत्यका में स्थित मानसरोवर तडाग (झील) अपनी रमणीयता और पवित्रता के लिए जगप्रसिद्ध हैं। उसके विभिन्न अंगों का जो प्रकृति-सम्बन्ध है, गोस्वामी जी विविध रूप में विवेचन करते हैं और अपनी रचना की उनके साथ उपमा प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार जो रामकथा के सम्बन्ध में भी विचारपूर्वक चार संवादों का विवेचन किया गया हैं और काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास और संत संवाद हैं, वही इस पवित्र और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं। इस रामचरितमानस के सात काण्ड है, वे ही मानसरोवर के सात सोपान (सीढ़ियां) हैं। सात काण्ड है- बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। इसी प्रकार श्रीराम की महिमा-श्रेष्ठ जल की गहराई है और रामसीता का जो यश है वही अमृत जल के समान हैं। इसी प्रकार जो रामचरितमानस में उपमायें दी गई हैं, वे मनोरम तरंगें हैं:-

सुठि सुन्दर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि।।

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।
ग्यान नयन निरखत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा।
बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
राम सीय जस सलिल सुधासम।
उपमा बीचि बिलास मनोरम।।

इस ग्रन्थ में जो चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है, मानसरोवर की कमलिनी (पत्र) है। इसी प्रकार जो रचनाशैली की विचित्रता है वही मणि उत्पन्न करने वाली सीपियाँ हैं, अन्य जो छन्द, सोरठा और दोहा का प्रयोग किया है, वे ही विविध रंग के कमल हैं। इसी प्रकार जो इसमें अनुपम अर्थ है, ऊँचे भाव हैं और सुन्दर भाषा है, वे ही पुष्पों के मकरंद और सुगन्धि हैं:-

पुरइनि सघन चारु चौपाई।
जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा।
सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा।
सोइ पराग मकरंद सुबासा।।

गोस्वामी तुलसीदास आगे कहते हैं कि पुण्य के जो समूह है, वही भ्रमरों की पंक्तियाँ हैं और ज्ञान-विज्ञान के विचार हैं, वही हंस हैं, जो रचना में ध्वन्यात्मकता एवं वक्रोक्ति और गुण हैं वे ही अनेक प्रकार की सुन्दर मछलियाँ हैं। पुनः चार प्रकार के पुरुषार्थ है (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) तथा ज्ञान-विज्ञान की चर्चा और इसी प्रकार नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्य के प्रसंग हैं, वे ही इस तडाग के विभिन्न प्रकार के जलजन्तु हैं तथा पुनः महात्माओं के जो नामकीर्तन हैं, वे ही विभिन्न प्रकार के जलपक्षी है।

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला।
ग्यान बिराग बिचार मराला।।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती।
मीन मनोहर ते बहुभांती।।
अरथ धरम कामादिक चारी।
कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।।
नव रस जप तप जोग बिरागा।
ते सब जलचर चारु तडागा।।

सुकृति साधु नाम गुन गाना।
ते बिचित्र जलबिहग समाना।।

इस क्रम में गोस्वामी तुलसीदास मानसरोवर में ऋतु और जलवायु का भी वर्णन करते हैं, जो सन्तों की सभा है, उसे गोस्वामी मानसरोवर के समीप की आम्रवाटिका (अमराई) कहते हैं। उनके अनुसार जो श्रद्धा है, वही बसन्त ऋतु है। इस क्रम में विभिन्न प्रकार के फल-फूल एवं उनके रसों का भी वर्णन करते हैं तथा विभिन्न प्रकार की भक्ति का निरुपण तथा क्षमा दया और दम आदि लता-मण्डप हैं तथा षम, यम, नियम और हरिपदरति, ये ही फलफूल और रस हैं। रामचरितमानस के वर्णनप्रसंग में जो अन्य कथायें आई हैं, वे ही शुक पिक और अनेक प्रकार के पक्षी हैं।

संतसभा चहुं दिसि अवँराई।
श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।।
भगति निरुपन बिबिध बिधाना।
छमा दया दम लता बिताना।।
सम जग नियम फूल फल ग्याना।
हरि पद रति रस बेद बखाना।।
औरउ कथा अनेक प्रसंगा।
तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा।।

इतना ही नहीं, गोस्वामी जी मानसरोवर के आस-पास जो वन-वाटिका और बाग हैं, उनका भी उल्लेख करते है तथा माली का भी, जो उन वनों को सींचता है, तदनुसार रामचरितमानस के पाठ से रोमांचित होना वन-वाटिकायें हैं और उससे जो सुख मिलता हैं वही पक्षियों के विहारस्थल हैं। निर्मल मन ही माली है। जो स्नेहजल से सींचता है।

पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।।

।।37।। बालकाण्ड

इस प्रकार मानस में काव्य के तत्वों का व्यापक रूप से संकेत मिलता है। ऊपर जो चौपाइयों और दोहों के उद्धरण दिये गये हैं, उनका उद्देश्य कथन में प्रामाणिकता लाना है। पूर्वोक्त वर्णन से जो मंगल कारक हैं, यह ध्वनित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास काव्यशास्त्रों के भी मर्मज्ञ थे।

बी-102, वानप्रस्थाश्रम
फेज-।।, पतंजलि योगपीठ
हरिद्वार- 249405
मो: 9414063138

प्रार्थना

प्रार्थना आत्मा का आहार है, भक्त को भगवान से जोड़ने का साधन है। विपत्ति, निराशा तथा प्रतिकूलताओं से जूझने के लिये प्रार्थना ही एकमात्र अवलम्बन है। सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। यह गुण धारण करने का प्रयास है, इससे उत्साह, सहाय तथा निरभिमानता प्राप्त होते हैं।

प्रार्थना भक्ति का ही रूप है। प्रार्थना वेदनापरक होती है और भक्ति आनन्द-परक। दु:ख तथा निराशा में प्रार्थी जब अन्त:करण से पुकारता है तो उसकी पुकार विधाता तक पहुँचती ही है।

प्रार्थना प्रभु तक पहुँचने वाला निमन्त्रण-पत्र है। यह पत्र पाते ही प्रभु भक्त तक दौड़े चले आते हैं।

अद्वैत की स्थिति बनाने के लिये समर्पण आवश्यक है। यही प्रार्थना का प्रयोजन है। यह समर्पण सार्थक बने, इसके लिये ही आत्मा परमात्मा से प्रार्थना करती है।

भारतीय संत परम्परा में नाथ संप्रदाय

शंकर लाल माहेश्वरी

नाथ सम्प्रदाय के संचालक मस्येन्द्र नाथ एंव गोरखनाथ माने जाते है। सिद्धों की भोग प्रधान योग साधना की प्रतिक्रिया स्वरुप ही नाथ पंथियों की हठयोग साधना का शुभारंभ हुआ। इस सम्प्रदाय के लोग हठयोग पर विशेष बल देते थे। इन्हें योग मार्गी कहा गया, निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना में संलग्न रहे दलित जातियों में अधिकांशतः सिद्ध नाथ संतों का आविर्भाव हुआ। इस सम्प्रदाय के साधकों को योगी, अवधूत, सिद्ध तथा ओगड़ कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि सिद्ध मत और नाथमत एक ही है।

नाथ सम्प्रदाय में गोरखनाथ प्रसिद्ध संत हुए। उनके द्वारा रचित ग्रंथ उपलब्ध है। इसके अलावा गोपीचन्द भर्तृहरि, चौरंगीनाथ आदि कवियों ने अपनी वाणी द्वारा नाथ परम्परा की साधना पद्धति का प्रचार प्रसार किया। इन संत कवियों ने अपनी रचनाएं दोहों अथवा पदों में ही की हैं। चौपाई का प्रयोग भी कहीं कहीं पर दृष्टिगत होता है। तत्कालीन संत साहित्य पर नाथों और सिद्धों का पूरा प्रभाव रहा है। चौरासी सिद्धों में विशेष मान्यता प्राप्त सिद्ध संत गोरखनाथ तथा मत्स्येन्द्र नाथ थे। राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार गोरखनाथ का जन्म काल तेरहवीं शताब्दी को माना जाता है। गुरु गोरखनाथ को गोरक्षनाथ भी कहते हैं। इन्हीं के नाम से गोरखपुर नगर का नामकरण माना जाता है। गोरखपंती साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं भगवान शिव परम्परा के अग्रदूत गुरु मत्स्येन्द्र नाथ थे। गोरखनाथ के पूर्व कई सम्प्रदाय थे। उनका भी विलय नाथ सम्प्रदाय में हो गया। साथ ही शैव व शाक्तों के अलावा बौद्ध, जैन तथा वैष्णव योगमार्गी भी नाथ सम्प्रदाय में विलीन हो गये।

गुरु गोरखनाथ ने अपनी योग साधना तथा साहित्य में तप स्वाध्याय और निराकार ईश्वर को महत्व दिया। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या चालीस बताई जाती है। कुछ लोग चौदह रचनाओं का उल्लेख करते हैं। गोरखनाथ जी द्वारा रचित साहित्य को 'गोरखवाणी' के नाम से संकलित किया गया है। हठयोग के साधक संत गोरखनाथ ने कई आसनों का प्रचलन किया। उटपंटांग अवस्था के आसनों के कारण लोग कहने लगे कि ये क्या गोरखधंधा है। गोरखनाथ की यह अटूट मान्यता थी कि सिद्धियों के परे पहुँच कर समाधिस्थ होना ही योगी का परम लक्ष्य होना चाहिए। समाधि से मुक्त होकर परम शिव के समान स्वयं को स्थापित कर ब्रह्मलीन हो जाने पर परम शक्ति का अनुभव होने लगता है। हठयोग की परम्परा को अग्रसर करने वालों में गोरखनाथ सर्वोपरि हैं। चौरंगीनाथ, चुणकरनाथ, भृतहरि, जालन्धिभाव आदि संतों ने भी हठ योग का प्रचार प्रसार किया। इस प्रकार असम आदि निकटस्थ राज्यों में भी इस सम्प्रदाय ने अपने पैर फैलाकर नाथ परम्परा को प्रोत्साहित किया।

गुरु शिष्य परम्परा को गति मिली, योग विधाओं का एकत्रीकरण हुआ। साधु संत परिव्राजक के रूप में अखण्ड ध्वनि रमाते थे। हिमालय की कन्दराओं में साधना करने लगे। हाथ में चिमटा, कमण्डल, कान में कुण्डल, कमर में कमरबन्धा, जटाधारी वेष में ये साधु सन्त धूणी रमा कर ध्यान करने लगे और अवधूत या सिद्ध कहे जाने लगे। इनके गले में काली ऊन का जनेऊ होता है। इनका पारस्परिक अभिवादन 'आदीश' शब्द से होता है। भभूत धारी बाबा भी इसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध होते हैं। ये नाथ साधु सन्त हठ योग पर विशेष बल देते हैं।

प्रारंभिक दस नाथों में आदिनाथ,

आनन्दीनाथ, करालानाथ, विकरालानाथ, महाकालनाथ, कालभैरवनाथ, बटुकनाथ, भूतनाथ, वीरनाथ और श्री कोंधनाथ सिद्धहस्त थे। बाद में इन्ही के बारह शिष्य हुए। अन्य शैवों की तरह नाथ परम्परा के संत न तो लिंगार्चन करते हैं और न ही शिवोपासना के विविध अंगों का निर्वहन करते है। तीर्थाटन और देवी देवताओं में विश्वास रखते हैं। कैला देवी और हिंगलाज माता के प्रति इन संतों की विशेष आस्था है। भस्म स्नान करते हैं, प्राणायाम की क्रियाओं को महत्ता देते हैं। वस्तुतः इनका ये पंथ योग साधना का ही पंथ माना गया है।

इस सम्प्रदाय के प्रमुख सिद्धांतः-

- यह शैव मत का शुद्ध योग सम्प्रदाय है।
- महर्षि पतंजलि की योग साधना का अनुसरण करते हैं।
- माँस मद्यादि तथा समस्त तामसिक भोजनों का निषेध करते हैं।
- मोक्ष की प्राप्ति के लिए काया शोधन अनिवार्य मानते हैं।
- इस मत में शुद्ध हठ योग तथा राज योग की साधनाएँ स्वीकार्य हैं।
- शारीरिक पुष्टता के लिए रस विद्या को महत्व दिया गया है।
- इस पंथ में जीवित समाधि लेने की प्रथा भी है।
- अलख जगाना तथा इष्ट देव का ध्यान करना और भिक्षाटन करना प्रमुख है।
- इस सम्प्रदाय के संस्थापक आदिनाथ को शंकर का अवतार माना गया है।
- इनके सिद्धांतानुसार परमात्मा केवल है। उसी परमात्मा तक पहुँचना मोक्ष है।
- अखण्ड ब्रह्मचारी होना सम्प्रदाय की गरिमा है।
- इस सम्प्रदाय में भस्म स्नान की विशेष महिमा है।
- नाथ पंथी काया को परमात्मा का आवास मानकर उसकी साधना करते हैं।
- काया शोधन के लिए यम नियम हठ योग के षट् कम (नेति, धोति, वस्ति, नोली, कपालभाति और त्राटक) का प्रयोग किया जाता है।
- शरीर पर भस्म का लेप कर शरीर में स्वांस का प्रवेश बन्द कर देते हैं और रोम कूपों को भी भस्म से बन्द कर देते है।

प्रारम्भिक दस नाथों के बारह शिष्य थे जो इस क्रम में हैं। नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द, सत्यनाथ, चरवटनाथ, अवधनाथ, वैराग्य नाथ, कान्ताधारीनाथ, जालन्धर नाथ और मलयार्जुन नाथ। नाथ सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रंथों में हठयोग, गोरखनाथ ज्ञानामृत, सिद्धसिद्धांत पद्धति गोरख कल्प गोरक्षसहस्त्रनाम, चतुरथीत्यासन, योगचिन्तामणि, योगमहिमा, योगमार्तण्ड, योगसिद्धांत पद्धति, गोरखनाथ दत्त गोरख संवाद, गोरखनाथ जी रा पद, गोरखनाथ के स्पुट ग्रंथ, ज्ञानसिद्धांत योग, ज्ञान निकुन्ज, योगेश्वरी साकी, नरवय बोध, विरह पुराण और गोरखसार ग्रंथ नाथ सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते है। नाथ सम्प्रदाय में भोग विलास का बहिष्कार माना गया। ज्ञान निष्ठा को विशेष महत्व प्रदान किया गया। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से मुक्त रहकर साधना मार्ग पर अग्रसर होना तथा गुरु को विशेष महत्ता प्रदान करते हुए आचरण की पवित्रता को सर्वोपरि मान्यता प्रदान की गई है। रसायन सिद्धि वैराग्य तथा वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध इस परम्परा में विशेषतः रहा है। नाथ साहित्य में दोहा छंद की बहुलता है। साहित्य में सुन्दर रूपक और उक्तियों द्वारा दिशा बोध प्रदान किया गया है। भाषा की दृष्टि से गौरसेनी अपभ्रंश का विशेष उपयोग हुआ है। निर्गुण काव्यधारा के सृजन में इन प्रवृत्तियों को विशेषतः लक्षित किया गया है। भारतीय संत परम्परा में इस सम्प्रदाय को विशिष्ट मान्यता प्राप्त है।

आगूचा-भीलवाड़ा राजस्थान- 311022
मो: 9413781610

'सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू'

बालकृष्ण कुमावत

मनुस्मृति में कहा गया है कि दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य होता है, सौ आचार्यों से बढ़कर एक पिता होता है और एक हजार पिताओं से बढ़कर एक माता होती है–

उपाध्यायन् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।

–मनु 2/154

माता को संसार का सबसे प्रथम एवं सबसे बड़ा विश्वविद्यालय माना गया है। संतान को जो शिक्षा व संस्कार माता देती है वह कोई भी संस्था या विश्वविद्यालय नहीं दे सकता। माता के गर्भ से यह शिक्षण प्रारंभ हो जाता है और निरंतर जारी रहता है। हमारे शास्त्रों में अनेक प्रमाण मिलते हैं कि माता द्वारा दी गई शिक्षा से संतान को अद्वितीय उपलब्धियाँ मिली हैं। वीर अभिमन्यु ने माता के गर्भ से ही चक्रव्यूह तोड़ने की विद्या सीख ली थी। माता कुन्ती के गर्भ में धर्मराज युधिष्ठिर ने सत्य का पाठ सीख लिया था तथा अर्जुन ने धनुर्विद्या में नैपुण्य प्राप्त कर लिया था। माता कौशल्या ने अपने पुत्र राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम बना दिया जिनके शील का उदाहरण सर्वत्र दिया जाता है और रामराज्य को आदर्श राज्य निरुपित किया जाता है। शुकदेव मुनि को तो सारा ज्ञान माता के गर्भ में ही प्राप्त हो चुका था और गर्भ से बाहर आते ही वे सच्चे विरागी व ज्ञानी होकर घर से चल दिये थे। अष्टावक्रजी ने वेदों का सारा ज्ञान अपनी माता के गर्भ में ही प्राप्त कर लिया था और जब उनके पिता ने वेद–पाठ के उच्चारण सही नहीं किये तो पेट में से ही माता की वाणी के माध्यम से अशुद्धि बताने लगे। आशय यह है कि संतान के निर्माण में–संस्कारों के सृजन में माता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

श्रीरामचरितमानस में माता के उपदेश का बड़ा मार्मिक प्रसंग आया है। माता सुमित्रा के पास लक्ष्मण वनगमन के लिये अनुमति प्राप्त करने जाते हैं क्योंकि भाई की स्वीकृति मिल चुकी थी। अनुमति माँगने के साथ लक्ष्मण यह चाहते हैं कि वन में उनके आचरण के संबंध में माता सुमित्रा मार्गदर्शन करे तथा कुछ उपदेश भी दे। माता सुमित्रा ने सारी घटना सुनकर लक्ष्मणजी को श्रीराम जानकीजी के साथ वनगमन की सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी तथा जो उपदेश पुत्र लक्ष्मण को दिया वह हमारे आध्यात्मिक एवं भौतिक जीवन की सार्थकता की कुंजी है। गोस्वामीजी तुलसीदासजी ने उसका वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है–

रागु रोषु इरिषा मद मोहू।
जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।
सकल प्रकार बिकार बिहाई।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।
जेहिं न राम बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू।।

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे रामसिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पर सुख सुरति बन बिसरावहीं।।
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नितनित नई।।

रा.च.मा. 2/74

माता सुमित्रा का संकेत है कि श्रीराम और सीता का वनगमन मानव कल्याण एवं राष्ट्रोत्थान के लिये हो रहा है। उसका यह अभियान तभी सफल

होगा जब तुम राग, रोष, ईर्ष्या, मद (घमंड) और मोह इनके वश में स्वप्न में भी नहीं होकर सब प्रकार के विकारों का परित्याग कर मन, कर्म तथा वचन से उनकी सेवा करोगे। तुम्हें वहाँ अपने आराम की चिन्ता नहीं करना है, तुम वही करना जिससे श्रीरामजी को वन में क्लेश न हो। ध्वनि यह है कि समाज या राष्ट्र की सेवा में राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह एवं अन्य विकार बाधक होते हैं। इनसे बचे रहने पर ही सच्ची सेवा हो सकती है। राग के वश में न होने का भाव यह है कि श्री सीतारामजी को छोड़कर अन्य किसी से प्रेम न करना, माता, पिता, भाई, पत्नी इत्यादि सबकी ओर से प्रेम हटाकर इनके ही चरणों में प्रेम रहे। अर्थात् और सब को मन से भुला देना। रोष के वश न होने का भाव यह है कि ये जो आज्ञा दें वह यदि तुम्हारे मन के अनुकूल न भी हो तो भी कदापि रुष्ट न होना। ईर्ष्या के वश में न होने का भाव यह है कि कभी भी किसी कारण से यह बात चित्त में न आने पाए कि ये भी राजकुमार हैं और हम भी राजकुमार, दोनों बराबर हैं, हम सेवा क्यों करें? मद के वश न होने का भाव यह है कि जाति, विद्या, बल इत्यादि का गर्व न हो, यह विचार कदापि न आए कि मुझे छोड़कर इनका कौन सेवक या रक्षक है? मोह के वश न होने का भाव यह है कि तुम घर का मोह मत करना। इनके स्वरूप और अपने स्वरूप को न भुला देना। माता सुमित्रा ने यह बात बल देकर कही कि सेवा करते समय तुम्हारा मन, कर्म तथा वचन शुद्ध रहे। मन की सेवा यह है कि सेवा के समय बराबर का ध्यान रहे। वचन की बात यह है कि मन की बात लखकर अनुकूल आज्ञा माँगना तथा उसका परिपालन करना। सदा प्रिय, मधुर व कोमल वचन बोलना। कर्म की सेवा का भाव यह है कि कैंकर्य में सदा तत्पर रहना। 'जेहि न राम बन लहहिं कलेसू' का आशय यह है कि श्रीराम जानकीजी तुम्हारा 'सुपास' करेंगे तुम उनका 'सुपास' करना। उन्हें किसी प्रकार का क्लेश न हो इसका तात्पर्य यह है कि वन में श्री रामजानकीजी को कोई असुविधा न हो। पर्णकुटी, भोजन, पुष्पशय्या, वन-जीवों से रक्षा इत्यादि की उपयुक्त व्यवस्था करना। माता सुमित्रा की इस शिक्षा में दो बार 'उपदेश' शब्द का उल्लेख हुआ है। एक बार तो क्लेश दूर करने के लिये कहा गया है तथा दूसरी बार श्रीराम जानकीजी को सुख देने के लिये कहा गया है। सुख भी ऐसा देना कि उन्हें माता, पिता, परिवार, नगर-सुख आदि की याद न आए। शिक्षा के साथ पुत्र लक्ष्मण को माता सुमित्रा ने आशीर्वाद भी दिया कि भगवान श्रीराम के चरणों में अविरल (निरंतर) तथा अमल (शुद्ध) प्रेम प्राप्त होगा। इस प्रेम में कभी स्वार्थ का मैल नहीं आएगा तथा यह नवनवोन्मेषयुक्त होगा।

माता सुमित्रा को कितना ख्याल है कि श्रीरामजी को दुःख न हो, यह बात गीतावली में भलीभाँति स्पष्ट होती है। अपने पुत्र लक्ष्मण को शक्ति लगने का शोक उनको नहीं है अपितु यह शोक है कि राम अकेले हैं। वे अपने दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को कहती हैं कि जाओ तुम श्रीरामजी की सेवा करो-

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि काज संग्राम सुभट सों लहि ललकरि लरे हैं।
सुवन सोक संतोष सुमित्रहिं रघपुति भगत बरे हैं।
कपि सो कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं।
तात जाहु कपि संग रिपु सूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं।
अंब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं।

गीतावली 6/13

इस संबंध में स्वामी प्रज्ञानचंदजी ने ठीक ही कहा है कि मानस की सुमित्राजी के समान माता का चरित्र अन्य किसी ग्रन्थ में तो क्या किसी अन्य देश या भाषा में मिलना असंभव है। अथ से इति तक सुमित्राजी के हृदय को पुत्र-विरह का स्पर्श भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने रामभक्त पुत्र को चौदह वर्ष के वनवास के लिये जाते समय भी हृदय से नहीं लगाया। धन्य धन्य भक्त जननी और उसका 'वजादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' अंतःकरण। ऐसी माता का पुत्र भी कसौटी पर खरा उतरता है। पुत्र ने माता के उपदेश का अक्षरशः परिपालन किया। जब माता ने यह कहा 'जनि सपनेहु इन्ह के बस होहु' तो लक्ष्मणजी ने विचार किया कि जाग्रत अवस्था में तो राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह आदि विकारों पर नियंत्रण रखा जा सकता है किन्तु कदाचित स्वप्न में इनके वशीभूत हो गया तो माता के आदेश का उल्लंघन हो जायेगा। अतः उन्होंने यह संकल्प लिया कि मैं चौदह वर्ष तक सोऊँगा नहीं अर्थात् निद्रा नहीं आने दूँगा। जब सोना नहीं होगा तो स्वप्न भी नहीं आएगा और माता की आज्ञा का उल्लंघन भी नहीं होगा। लक्ष्मणजी चौदह वर्ष तक सोये नहीं। सेवा के इस कठोर व्रत के पालन का ही फल था कि वे इन्द्र को जीत लेने वाले महान् योद्धा रावण-पुत्र मेघनाद को रणभूमि में पराजित करने में सफल हुए।

पुत्र लक्ष्मण को माता सुमित्रा द्वारा दी गई शिक्षा समाज तथा राष्ट्र की सेवा करने वाले व्यक्ति के लिये एक सच्ची शिक्षा है। राष्ट्र या समाज की सेवा में संलग्न व्यक्ति को राग, रोष, ईर्ष्या, मद तथा मोह इत्यादि विकारों से दूर रहना चाहिये तथा अपने निजी स्वार्थ का परित्याग कर, निजी सुख-सुविधा की चिन्ता किए बिना केवल राष्ट्र या समाज के हित को ही ध्यान में रखना चाहिये। मन, कर्म तथा वचन से राष्ट्र या समाज को किसी प्रकार से क्षति न पहुँचे, कोई अहित न हो यही सेवा का सच्चा धर्म है। आज के राजनेताओं, सेवकों, कर्मचारियों तथा समाज सुधारकों एवं नागरिकों को माता सुमित्रा की शिक्षा सदैव प्रेरणा देती रहेगी और इस बात को स्मरण कराती रहेगी कि राष्ट्र सर्वोपरि है अतः इसकी सेवा सब प्रकार के विकारों को त्यागकर करनी चाहिये।

चारों तरफ लुटेरों की टोलियाँ
कोयल सी मीठी काग की बोलियाँ,
अभिनय राम का, रावण के करम
मुखौटों से भरी, सारी झोलियाँ।

शबरी के राम तुम्ही हो
मीरा के श्याम, तुम्ही हो
ना मीरा, ना मैं शबरी
मेरे परनाम तुम्हीं हो।

राम,
मेरे लिये,
हनुमान की सी भक्ति
कहाँ संभव?
मैं तो बस
शबरी सा
तेरे प्रेम में पागल।
मेरी विनती
सुनो राम,
अपनी चरणरज
मेरे माथे से छुआ दो
मुझे जन्म-
जन्मांतर के लिये
आवागमन से
बचालो मेरे राम....''

मोह निशा सब सोवनि हारा

सनातन कुमार वाजपेयी 'सनातन'

'श्री रामचरित मानस' गोस्वामी तुलसीदास की अनुपम कृति है।

भाषा की दृष्टि से भी इसके सभी प्रसंग सरल होते हुये भी अत्यंत गूढ़ एवं रहस्यमय हैं। यही कारण है कि सामान्य पाठक से लेकर महान विद्वान गण भी इसमें अवगाहन कर आनंद की अनुभूति करते हैं।

प्रस्तुत लेख श्रीराम वन गमन के प्रसंग में श्रीराम, सीता, सुमंत्र एवं लक्ष्मण श्रृंगबेरपुर में प्रवास से सम्बन्धित है। निषाद ने सुना, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता एवं सुमंत्र श्रृंगबेरपुर में आ रहे हैं। साथियों सहित दौड़ पड़ा उनसे मिलने। पुलकित देह, प्रेमाश्रुओं से सराबोर नेत्र, अवरुद्ध कंठ। प्रेम, त्याग और समर्पण की साक्षात् प्रतिमा। प्रभु श्री राम तो ऐसा ही निश्छल प्रेम और समर्पण चाहते हैं। उठाकर लगा लिया छाती से उस निषाद को जिसे लोग अछूत मानते हैं। ''जासु छाँह लै चाहिए सींचा''। जिसकी छाया से भी लोगों को परहेज था, अपना लिया उसे। धन्य हो गया निषाद। भुवन भूषण बन गया वह। देवगण भी उसके सौभाग्य पर सिहाते हैं। मुदित हो पुष्प वर्षा करते हैं।

भोला निषाद क्या जाने प्रभु की महिमा। सोचा उन्हें अयोध्या के राज्य से वंचित किया गया है तो क्या हुआ? मेरा राज्य वैभव तो है। अर्पित कर दूँगा इन्हें सब। इन्हीं का तो है। मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ। प्रस्ताव रखा उसने प्रभु श्री राम के समझ। श्रीराम ने अपने पिता की आज्ञा की जानकारी दी। दुखी हो गया वह सुनकर। पर करता क्या बेचारा?

सभी वनवासियों का निशा निवास आज वहीं था। प्रभु श्रीराम ने शैय्या तैयार करने का आदेश दिया। उसने शिशुंपा वृक्ष के नीचे कुश एवं पर्णों की सुकोमल शैय्या तैयार कर दी। भोजन के लिये कंद, मूल, फलादि रख दिये साथ ही दोनों में पीने हेतु जल भरकर रख दिया। सभी ने फलाहार किया। फिर श्रीराम, सीता एवं सुमंत्र अपनी शैय्या में शयनार्थ चले गये। श्री लक्ष्मण श्रीराम के पैर दबाने लगे। प्रभु की निद्रा लगते ही लक्ष्मण कुछ दूरी पर धनुष बाण लेकर वीरासन में विराजमान हो पहरेदारी में संलग्न हो गये। निषाद यत्र-तत्र विश्वस्त पहरेदारों को नियुक्त कर स्वयं श्री लक्ष्मण के सन्निकट जा बैठा।

श्रीराम और सीता को कुस साथरी पर विश्राम करते देख निषाद का हृदय भर आया। वह विह्वल होकर बोल पड़ा। आह् कहाँ ये राजमहलों के सुखों में पहले राजकुमार और कहाँ यह कठोर भूमि और उस पर कुश एवं पत्तों की शैय्या? यह विधि की कैसी विडम्बना है? यह सब निष्ठुरा कैकेयी की करतूत का ही कफुल है। यथाः-

कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जे रघुनन्दन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह।।

श्री लक्ष्मण ने सुना। समझ गये कि निषाद श्रीराम को सामान्य राजकुमार समझ रहा है। उसे इनके स्वरूप का बोध नहीं है। प्रभु तो एक निर्विकार सत्ता हैं। उन्होंने उसे समझाते हुए कहाः-

मित्र,- **कोउ न काहु दुख सुख कर दाता।**
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।।

कोई किसी को दुख और सुख नहीं देते। सभी अपने द्वारा किये गये कर्मों के फल अथवा प्रारब्ध को भोगते हैं। संसार के मूल में फलासक्ति है। स्वरूप से कर्म का त्याग संभव नहीं है। फलासक्ति से रहित निष्काम कर्म ही कर्म की कुशलता है। कृतित्व की अहमिति ही विभिन्न योनियों की जन्मदायिनी एवं दुख की मूल है। कर्म में अकर्म ही सुख का साधन है। सभी कर्म प्रकृति जन्य हैं। प्रकृति ही प्रकृति में वर्तन करती है। किन्तु भ्रमवश हम उन कर्मों का कर्ता स्वयं को मानकर दुख में पड़ते हैं। कर्म से बँधते हैं। दुख-बाहर नहीं है अपितु हमारे अन्दर ही विराजमान है। अतः ऐसा सोचकर किसी दूसरे को दोष देना उचित नहीं है। यथाः-

अस विचार नहिं कीजिय रोसू।
काहुहिं वादि न देइअ दोसू।।

विधि प्रपंच गुण दोष मय है। यहाँ दुख-सुख, अच्छा-बुरा, ऊँच-नीच, संपत्ति-विपत्ति आदि सभी कुछ है। इन्हें द्वन्द्व कहा जाता है। इनमें डूबना ही विषमता है। दुख का कारण है। ये स्थायी नहीं है। आने जाने वाले हैं। इनसे परे होना ही समत्व योग है। सुख हैं। शान्ति के सागर में गोते लगाना हैं। बिना समता में स्थिति हुय सुख नहीं है। हम जो कुछ भी देखते, सुनते अथवा गुनते हैं वह सब मायात्मक है। यथाः-

देखिअ सुनिअ गुनिअ मनं माहीं।
मायाकृत परमारथ नाहीं।।

यह मायात्मक प्रपंच असद होते हुये भी परमार्थ की सत्ता से अविद्या के कारण सद् जैसा भासता है। यथाः-

सपने होइ मिखारि नृप, रंक नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ।।

यह त्रिगुणात्मक प्रपंच ही जीव के बंधन का कारण है इसके प्रति उपरति ही जागना है और आसक्ति ही सुसुप्तावस्था है। यथाः-

मोह निसा सब सोवनिहारा।
देखहिं सपन अनेक प्रकारा।।

अतः इस संसार से परे होने की आवश्यकता है। इसके लिये सभी विषयों के विलास से उपराम होने की आवश्यकता है। यथाः-

जानहिं जबहिं जीव जग जागा।
जब सब विषय विलास विरागा।।

संसार के सभी जीव शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध इन पाँच इन्द्रिय विषयों में आसक्त हैं। इन विषयों के प्रति अनासक्ति ही परमार्थ की प्राप्ति है। जागरण है। अन्यथा सुसुप्तावस्था ही है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भी इस तथ्य का निरुपण किया गया हैः- यथा-

या निशा सर्व भूतानाम् तस्याम जागर्ति संयमी।
यस्याम् जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

दुख अथवा सुख का मूल, मोह, अविद्या या अज्ञान है। क्योंकि ये सब प्रकृतिजन्य हैं। अतः द्वन्द्वों से अतीत होना ही कल्याणकारी स्थिति है। भगवान श्रीराम सन्त और असन्त का भेद बतलाते हुए श्री भरत से कहते है किः-

सुनहु तात मायाकृत गुण अरु दोष अनेक।
गुण यह उभय न देखिय देखिय सो अविवेक।।

अतः द्वन्द्वों की निर्मूलता ही अक्षय का आनंद का मूल है।

विषयों का विलास निद्रा का नशा है, बाह्य यात्रा है। इससे प्रत्यावर्तन ही आत्मा की ओर गमन है। यही मानव जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। स्वरूप की प्राप्ति है। यहाँ पहुँच कर जीव फिर संसार में वापिस नहीं आता। यही परमधाम है।'' यथाः-

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।।

अतः मित्र, तुम इन रहस्यों को विधिवत् जान लो। एक रहस्य और भी जान लो किः-

राम ब्रह्म परमारथ रूपा अविगत अलख अनादि अनूपा हैं। श्रीराम कोई प्रकृति जन्य शरीरधारी मनुष्य नहीं हैं। वे तो परम ब्रह्म परमात्मा हैं। उनका यह स्वरूप, कार्य एवं व्यवहार सब कुछ मात्र लीला के लिये है। वे सकल विकार रहित गतभेदा हैं। अतः तुम इन मोहजन्य विकारों के वशीभूत होकर व्यर्थ दुखी मत होओ एवं श्रीराम के चरणकमलों की सेवा में जुट जाओ। उनसे प्रेम करो। हमारा तुम्हारा एवं सभी जीवों का यही परम धर्म है कि हम निष्काम भाव से अपने विहित कर्मों का सम्पादन करते हुये परम प्रभु परमात्मा राम के प्रति उनके फल को अर्पित कर दें। कर्म प्रकृति में है। हमारे स्वरूप में नहीं। हमें शरीर प्रकृति से मिला है। इस शरीर से सम्पादित कर्म के कृतित्व को हम अपने स्वरूप पर आरोपित करके दुख एवं सुख के भागीदार बनते और बन्धन में पड़ते हैं। अतः मन वचन और कर्म से परमात्मा के प्रति समर्पित होना ही सच्चा धर्म है। यही मानव जीवन की सार्थकता हैं। सच्चा मोक्ष है।

पुराना कछपुरा स्कूल
गढ़ा, जबलपुर-482003
दूरभाषः 0761-2425137

अध्यात्म ज्ञान बनाम भक्ति

ओमप्रकाश मंजुल

ज्ञान और भक्ति को अध्यात्म में अति महत्व प्राप्त है। इनकी लाभदेयता लौकिक जीवन में भी कम नहीं है। यदि आपको भौतिक जीवन से जुड़ी चीजों एवं क्रियाओं का सम्यक् ज्ञान नहीं है तो आप उस व्यक्ति की तुलना में असफल कहे जायेंगे, जिसने इनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके अपेक्षाकृत अपनी जीवन-शैली (Life style) को सुधार लिया है और जीवन-स्तर (Standard of living) को उच्च कर लिया है। इसी प्रकार भक्ति भी भौतिक जीवन में भारी सहायता करती है। भक्ति का सामान्य अर्थ होता है, 'प्रेम'। प्रेम से क्या प्राप्त नहीं किया जा सकता? अध्यात्म में तो इन दोनों का पग-पग पर महत्व है। अध्यात्म के राजमार्ग पर इन दोनों के बिना दो कदम बढ़ना भी कठिन है- सामान्यतः ज्ञान और भक्ति को परस्पर विरोधी माना जाता है, पर वास्तविकता यह है कि ज्ञान और भक्ति कहीं पर एक दूसरे के शत्रु हैं, तो कहीं पर सहयोगी और आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों ही आवश्यक एवं अनिवार्य हैं। ज्ञान की तुलना में भक्ति को और भक्ति की तुलना में ज्ञान को गौण मानने के कारण ज्ञानी और भक्त दोनों ही 'ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा' नामक सूक्ति का सहारा लेकर इसकी अपने-अपने ढंग से व्याख्या किया करते हैं- ज्ञानी कहता है कि 'मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में जो मायावी बाधायें हैं, उन्हें ज्ञान की कृपाण से ही काटा जा सकता है, जबकि भक्त इसी पंक्ति का अर्थ करता है कि 'ज्ञान पर आधारित जीवन तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन एवं कष्टप्रद है-ज्ञान स्वयं कृपाण की धार जैसा है-अस्तु, मोक्ष-प्राप्ति के लिए भक्ति का अवगाहन अपेक्षतः श्रेष्ठतर है'।

जगद्गुरु कृष्ण गीता में कहते हैं 'नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यतेः' (ज्ञान से अधिक पवित्र श्रेष्ठ एवं वरेण्य कुछ भी नहीं है) इस संदर्भ में अखण्ड-ज्योति, अप्रैल-2006 के पृष्ठ-38 पर उल्लिखित रामकृष्ण एवं तोतापुरी के एक आध्यात्मिक प्रसंग को उद्धरित करना चाहेंगे-गुरु तोतापुरी ध्यान (वस्तुतः ज्ञान) के द्वारा रामकृष्ण की कुण्डलिनी जाग्रत कराना चाहते थे, पर ध्यान लगाने पर माँ काली की लीलाएँ उनके (रामकृष्ण) के मानस पटल पर अवतरित होने लगतीं और महाशक्ति कुण्डलिनी की चेतनधारा विविध चक्रों को पार करके अंततः आज्ञा चक्र में रुक गयी। तोतापुरी ने निर्देश दिया, ''आगे बढ़ो माँ को छोड़कर'' रामकृष्ण बोले। तोतापुरी ने कहा, '' हाँ ज्ञान की तलवार लेकर काली के शतखंड करो और अखंड निराकार के धाम में प्रवेश करो।'' अनेक प्रयासों के बावजूद रामकृष्ण यह न कर सके, तब गुरु तोतापुरी ने एक नुकीले पत्थर-खण्ड से रामकृष्ण के भूमध्य में आज्ञा चक्र को जोर से दबाते हुए निर्देश दिया, ''पार करो अन्तिम बाधा, उठाओ ज्ञान की तलवार और भेदन करो चिद्शक्ति, खोलो ब्रह्म की अनंतता के द्वार।'' इस बार का निर्देश अनुपालित हो गया और फिर पलभर में रामकृष्ण की कुण्डलिनी-शक्ति पूर्णतः जाग्रत हो गयी और वे स्वामी रामकृष्ण 'परमहंस' हो गये। पर जिस ज्ञान का इतना महिमा-मण्डन किया गया है, उसके विरोध में कहने के लिए भी बहुत है। ज्ञान तर्क का तात (पिता) है। तर्क अहंकार बढ़ाता है। अहंकार श्रद्धा को अनीश्वरवाद के स्तर तक बढ़ा देता है। इसीलिए अहंकार को बंधन का बहुत बड़ा हेतु

बताया गया है-ज्ञान पर आधारित ज्ञान पैथी को दर्शन एवं अध्यात्म के क्षेत्र में 'शास्त्रार्थ' की संज्ञा से सुदूर पूर्व से ही सम्मान प्राप्त होता आया है। 'शास्त्रार्थ' की यह परम्परा रही है कि इसमें अन्य सभी चीजें गौण रहती हैं, स्वयं को विजेता ज्ञानी प्रदर्शित करने का भाव प्रमुख रहता है। इस अभिमान एवं अहंकार की परिणति द्वन्द्व, भेद और मतभेद (झगड़ा) के रूप में हुआ करती है- इसलिए अहंकार-अभिमान (प्रकारान्तर से 'ज्ञानवता') को अच्छा नहीं माना जाता। तभी तो हनुमान रावण को इन शब्दों में समझाने का प्रयास करते हैं- ''मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान। भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान।'' ज्ञान आदमी को अनीश्वरवादी और नास्तिक बनाता है। इसकी पुष्टि हेतु यहाँ विश्व में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले, 'दैनिक जागरण' के 23 जून, 2007 के अंक में प्रकाशित एक समाचार उद्धरित है। अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठ पर यह समाचार लंदन से लगाया गया था। इसका शीर्षक 'भगवान से दूरी बढ़ाता है ज्ञान' काफी मोटा था और खबर भी खासी बड़ी थी। इसी समाचार का एक अंश हू-ब-हू प्रस्तुत हैः 'लंदन एजेन्सी-संत महात्मा कहते हैं कि ज्ञान पा लेने पर व्यक्ति ईश्वर को पा लेता है, लेकिन एक ज्ञानी पुरुष ने शोधकर इससे उलटा निष्कर्ष निकाला है। अल्सटर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर रिचर्ड लिन के नेतृत्व में हुए शोध में ज्ञान और आस्था के बीच संबंधों की पड़ताल की गई। पता चला कि विश्वविद्यालय के शिक्षाविद् दूसरे किसी लोगों की तुलना में कम आस्तिक (भगवान को मानने वाले) होते हैं- प्रोफेसर लिन कहते हैं- 'आम लोगों की तुलना में भगवान में विश्वास रखने वाले शिक्षाविदों की संख्या काफी कम होती है क्यों? इसका कारण यही है कि शिक्षाविदों के ज्ञान का स्तर (आई.क्यू.) आम लोगों की तुलना में ज्यादा होता है।' ब्रिटिश अखबार 'द डेली टेलीग्राफ' ने प्रोफेसर लिन के हवाले से लिखा है कि ज्यादा आई.क्यू. वाले व्यक्तियों को अपने ज्ञान पर काफी भरोसा होता है। वे जीवन में किसी चीज के लिए भगवान पर निर्भर नहीं रहते हैं।

'इंटेलिजेंस' जर्नल में प्रकाशित लिन की शोध रिपोर्ट में कहा गया है कि प्राइमरी स्कूल के बच्चे ईश्वर में यकीन रखते हैं, लेकिन जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं और उनकी बुद्धि बढ़ने लगती है, तो ईश्वर में उनका विश्वास कम होने लगता है और कई तो पक्के नास्तिक बन जाते हैं। लिन का तो यहाँ तक कहना है कि ज्यादातर बुद्धिजीवी ईश्वर में यकीन नहीं रखते, जबकि सामान्य लोग या आबादी का बड़ा हिस्सा आस्तिक होता है...' जॉनवेस्ली ने ठीक ही कहा है 'छटांक भर प्रेम (भक्ति) सेर भर ज्ञान से कहीं अच्छा है''

ज्ञानी में जहाँ विद्वान होने का अहं होता है, भक्त में वहाँ समर्पण भावाधिक्य के कारण नम्रता होती है। ज्ञान के संबंध में जहाँ 'ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा' कहा जाता है, वहीं भक्ति के संबंध में 'अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयापन बांक नहीं' कहा गया है। भक्ति की पगडंडी भी सीधी है और इस पर चलने वाला भक्त भी सीधा, सरल और निश्छल व्यक्ति होता है। यहाँ सयाने पन, होशियारी और चालाकी की वक्रताएँ-कुटिलताएँ कतई काम नहीं आती। इसमें ज्ञान के सापेक्ष एक अति विशिष्ट लाभ यह भी है कि भक्ति और माया दोनों समान लिंगीय होने के कारण, माया भक्ति को प्रभावित नहीं कर पाती। तुलसीदास ने बहुत ठीक ही लिखा है-'मोह न नारि नारि केरूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।' ज्ञान के साथ बात उल्टी है। ज्ञान

पुल्लिंग है, उसे स्त्री माया सरलता एवं शीघ्रता से अपने वश में कर लेती है। नारी–मोह में तो नारद जैसे देवर्षि और विश्वामित्र जैसे ब्रह्मर्षि तक ग्रस्त हो गये, तो सामान्य गृहस्थ की क्या स्थिति है। भगवत्मार्ग में ज्ञानी नं 2 का पथिक है और भक्त नं 1 का या यह कहें कि ज्ञानी भगवान को नं. 2 पर मानता है और ज्ञान के नं 1 पर। इसीलिए आज तक किसी भी ज्ञानी को भगवान के दर्शन नहीं हो सके हैं (यह दीगर बात है कि वह अपनी झेंप और खीज मिटाने के लिए तथा स्वयं भ्रम में रहता हुआ दुनिया को भ्रम में रखने के लिए इस तरह की बहानेबाजी करता रहा हो कि 'भगवान सत्य स्वरूप है' इत्यादि–इत्यादि), जबकि भक्ति के क्षेत्र में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब भक्त को भगवान का सान्निध्य, सहारा और दर्शन प्राप्त हुआ है। तुलसी ने भगवान के एक से अधिक बार दर्शन किये थे। प्रमाणस्वरूप, चित्रकूट के घाट पर गई संतन की भीर। तुलसीदास चंदन घिसै तिलक देत रघुवीर।।' दोहा आज भी लोगों के होठों पर अनायास आ जाता है। सूरदास को भगवान कृष्ण ने उनकी बांह पकड़ कर कुएं से बाहर निकाला था। उस समय सूर बस इतना ही कह पाये थे– 'बांह छड़ाये जात हो, निबल जानि कै मोहि।' मीरा ने मानों कृष्ण को क्रय ही कर लिया था। वे नाचती हुई गाया करती थीं– 'सखी री! मैंने गिरधर लीन्हो मोल। कोई कहे छाने कोई कहे छिपके लियो री बजन्ता ढोल।।' तथा यह उनकी भगवशक्ति की पराकाष्ठा ही थी कि मृत्यु के समय श्रीकृष्ण का विग्रह विकीर्ण हो गया और मीरा उसी में समा गयी। नरसी भक्त का अरबों–खरबों का भात उनने नरसी का बेटा बनकर उनकी बेटी, रामा को पहनाया तथा भक्त रामदेव के बहते हुए अभंगों को नदी के किनारे झाड़ी में फंसाकर रोक दिया तथा उन्हें स्वप्न में बताकर उनके प्राण जैसे प्रिय अभंगों की रक्षा की ऐसे अनेक उदाहरण हैं। भगवान का दर्शन करने वाले ये सभी भक्त न बोधिसत्व को प्राप्त थे और न इनमें से कोई हाईस्कूल ही पास था। पर, किसी ज्ञानी के पास ऐसा कोई अनुभव नहीं आया। कार्ल मार्क्स दुनिया का सबसे बड़ा पढ़ाकू अर्थात विद्वान माना जाता है, वह तो भगवान को ही नहीं मानता था। स्वामी दयानंद ने भी सत्य की खोज की एवं ज्ञानार्जन में सम्पूर्ण जीवन लगाया, पर वे भी ईश्वर के दर्शन नहीं कर सके। सिद्धार्थ, जो 'महाबोधत्व' को प्राप्त कर महात्मा बुद्ध बने, को विश्व का एकमात्र ऐसा व्यक्ति माना जाता है, जिसे 'सच्चा ज्ञान' प्राप्त हुआ था (इसीलिए उन्हें ईश्वर का अवतार माना जाता है) पर, ईश्वर के दर्शन उन्हें भी न हो सके। उनके जिज्ञासु शिष्यों ने जब भी उनसे आत्मा एवं परमात्मा के अस्तित्व से सम्बन्धित प्रश्न किये, तब हर बार उनने मौन धारण कर लिया, कोई उत्तर नहीं दिया। इसे क्या माना जाये? समझदार के लिए संकेत ही काफी है। चार्वाक, जे.एस. मिल, लेनिन, फ्रायड, नीत्से आदि छुटभैए विद्वान और ज्ञानी तो अनेक ही हैं, जिन्हें खुदा न मानने के कारण, न खुदा ही मिला न बिसाले सनम। अलबत्ता भक्ति भी जब अंधी होकर अंधविश्वास बन जाती है, तब बहुत क्षति पहुँचाती है, तब व्यक्ति भक्ति के नाम पर देवी–देवताओं को इंसानों की बलि भी चढ़ाने लगता है, तभी से समाज में न मालूम कितने बाबा और गुरु 'भोले' और 'भगवान' के अवतार बनने लगते हैं।

यद्यपि यह पूर्व में कहा जा चुका है कि ज्ञान पूजनीय है। इसीलिए तो सृष्टि के निर्माता भगवान ब्रह्मा स्वयं ज्ञान की देवी अपनी पत्नी सरस्वती की प्रार्थना–वन्दना करते हैं (जबकि लौकिक संसार में कोई भी अपनी पत्नी की पूजा नहीं करता) इस

'सरस्वती वंदना' पर ध्यान दें- 'या कुन्देन्दु तुषार-हार-धवला, या शुभ्र वस्त्रावृता। या वीणा वर दण्ड मण्डित करा, या श्वेत पद्मासना। या ब्रह्माच्युत शंकर प्रभृतिभिर देवैस्सदा वंदिता। सामाम् पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।' यह भी पूर्व में कहा जा चुका है कि ज्ञान महान होते हुए भी भक्ति से महान नहीं है। ज्ञान के कारण सरस्वती की तो ब्रह्मा वंदना ही करते है, पर भक्ति के कारण भक्त, अनुसूइया तो शंकर और विष्णु सहित ब्रह्मा को छः माह का शिशु ही बना लेती हैं। लोक में जितनी श्रद्धा हनुमान के प्रति व्याप्त है, उतनी श्रद्धा शायद उनके इष्ट भगवान राम के प्रति भी नहीं है (लोग उन्हें अपना गुरु, इष्ट एवं आदर्श मानते हुए मंगलवार को उनकी विशिष्ट आराधना-उपासना करते हैं, जबकि भगवान राम की पूजा-अर्चना के लिए कोई भी विशिष्ट दिन निर्धारित नहीं है।) हनुमान की विशिष्ट मान्यता एवं माहात्म्य इसीलिए है कि वे बुद्धि और विद्या के तो सागर ही थे, जबकि भक्ति के महासागर थे।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विधते' का उपदेश अवश्य दिया है, पर यह कहीं नहीं कहा है कि 'यह जरूरी नहीं है कि पवित्र पदार्थ अपेक्षतः उपयोगी ही हो या अपवित्र पदार्थ अपेक्षतः अनुपयोगी ही हो' (हालांकि अपवित्र पदार्थ के स्थान पर पवित्र वस्तु ही वरेण्य है) मूत्र चाहे अपना हो या अथवा अन्य का, अपवित्र ही माना जाता है, पर उपयोगिता की दृष्टि से इसका कोई मुकाबला नहीं। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई स्वमूत्र का सेवन करते रहने के कारण मरीज होते हुए भी लगभग सौ वर्षों तक जिये थे। इसी प्रकार गाय का मूत्र तो 'दूसरा अमृत' ही माना जाता है। इसके विपरीत शुद्धता के प्रतीक सोना को लीजिए। इसे पाते ही आदमी पागल हो जाता है। तभी तो बिहारी ने कहा है, 'कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय। बा खाये बौराय जग, जा पाये बौराय।' अलबत्ता भक्ति तो पवित्र भी है और 'स्वर्ग की निसेनी' होने के कारण परम उपयोगी है, तो उसका सापेक्षतः श्रेष्ठतर होना स्वाभाविक ही है।

निष्कर्षतः ज्ञान और भक्ति दोनों ही भाई और बहिन की भाँति सहयात्री हैं-दोनों वाया मुक्ति स्वर्ग तक ले जाने वाली सीढ़ियाँ या मार्ग हैं- इनमें दोनों ही श्रेष्ठ हैं, कोई किसी से कम नहीं, पर यदि इनमें से किसी एक की श्रेष्ठता सिद्ध घोषित करने की बाध्यता या अपरिहार्यता ही हो, तो यही कहा जायेगा कि भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठतर है, भले ही श्रेष्ठता एवं महानता के मामले में यह 20 (बीस) हो और ज्ञान 19 (उन्नीस) एतावता भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अष्टम अध्याय में अर्जुन को यह निरोक्ष एवं निर्विकल्प देशना देते हैं-

'वेदेषु यज्ञेषु तपः सुचैव,
दानेषु यत्पुण्यं फलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमु पैतिचाद्यम्।।'

योगी राज कृष्ण गीता के अंतिम अध्याय में भक्त को जब निम्नलिखित आश्वासन पूर्ण अभयदान देते हैं, तब उसके बाद भक्ति के पक्ष में कहने को कुछ शेष ही नहीं बचताः

'सर्व धर्मान्परिज्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिण्यामि मा शुचः।

मो. कायस्थान, पूरनपुर,
पीलीभीत- 262122

समीक्षायणः

पूर्णांगिनी/डॉ. चातक/आयुष पब्लिकेशन 36/64 किरण पथ,
मानसरोवर जयपुर–20/पृष्ठ 112/मूल्य 150/–
नवावतार कृष्ण प्रिया राधा का

समीक्ष्य कृति के प्रणेता डॉ. चातक का नाम एक सिद्धहस्त कवि के रूप में हिन्दी काव्य जगत में एक जाना पहचाना नाम है। मुझे खेद है कि मैं उनके विलक्षण सृजन–कर्म से अब तक अपरिचित रहा। इसमें मेरे सीमित ज्ञान का ही दोष है। बहरहाल, प्रचार पराङ्गमुख व्यक्तित्व के धनी, वीणा पाणि के मौन साधक डॉ. चातक की प्रस्तुत कृति मेरे सामने है। इसके आद्योपांत अनुशीलन के उपरान्त मुझे कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि मुझे उन्हें काफी पहले पढ़ना चाहिए था। काव्य का ऐसा अजस्त्र प्रवाह, अकुंठ, निर्बाध अभिव्यक्ति और अत्यन्त मनोहारी भावाढ्य–संप्रेषणीयता–इन सभी ने मेरा मन मोह लिया।

कृति का कथ्य सनातन है, राधा और कृष्ण का प्रेम और उनका पारस्परिक विछोह अनेक काव्य–सर्जनाओं का प्रतिपाद्य रहा है। इस प्रकार के सृजन की एक दीर्घ परम्परा रही है। विभिन्न कवियों ने अपने–अपने ढंग से इस पुरा–प्रसंग को काव्य में रूपायित किया है। पर, डॉ. चातक ने राधा को पूर्णांगिनी का जो अभिधान प्रदान किया है वह सर्वथा मौलिक एवं उनकी नवोन्मेषिणी काव्य–प्रतिभा का परिचायक है। भावयित्री एवं कारयित्री प्रतिभाओं का एक मनोरम समीकरण इस कृति की विशेषता है। तीन खण्डों–विवृत्ति, अन्तर्गति, भृंग–गति– में सुविन्यस्त और प्रत्येक के अन्तर्गत सात उप खण्डों में निबद्ध यह कृति एक खण्ड काव्य के रूप में पढ़ी जा सकती है। कहना न होगा कि वर्तमान समय में महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि प्रबन्ध काव्यत्व की प्रतीक काव्य–रचनाओं की परम्परा एक प्रकार से विलुप्त सी हो गई है। ऐसा क्यों हुआ है या हो रहा है, इस पर काव्य–अध्येताओं को सोचना चाहिए। 'पूर्णांगिनी' एक चरित्र प्रधान काव्य कृति है। यहाँ पर कवि ने राधा को अखण्ड कुमारिका एवं कृष्ण की मूल प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया है। पूरी की पूरी कृति राधा के अखण्ड प्रेम और कृष्ण की उनके प्रति अगाध अनुरक्ति–भावना से ओतप्रोत है। लगता है स्वयं कवि रचना–प्रक्रिया के दौरान राधा–कृष्णमय होकर कृति की अन्तर्आत्मा में प्रवेश कर गया है। अद्भुत, मार्मिक, हृदयसंवेद्य, यह कृति एक क्षण के लिए हमें आत्मविभोर कर देती है।

शिल्प के स्तर पर यह कृति अछान्दस होते हुए भी सतत प्रवाही है, एक अन्तर्भूत लय इस कृति को सहज एवं सुसम्प्रेषणीय बनाती है। ठीक भी है, छन्द का आग्रह प्रायः कभी–कभी कवि के चेतना–प्रवाह को कुण्ठित कर देता है। कवि का यह कथन समीचीन है, 'उस पूर्वार्द्ध में छन्दबद्धता ने मुझे कुण्ठित कर दिया था। जो कुछ मैं कहना चाहता था वह निकल नहीं पाता था और अन्य–अन्य भाव–विचार कागज पर छा जाते थे।' सुन्दर प्रतीक विधान, अभिनव रूपक, उपमा आदि का प्रयोग, यथास्थान पुरातन को अधुनातन से जोड़ने का काव्यगत प्रयत्न, ये सब कृति को पढ़े बिना महसूस नहीं किये जा सकते। कवि की 'अपनी बात' को मनोयोग से पढ़ने के बाद कृति की पूर्वपीठिका और उसके सौंदर्य को सहजता से आत्मसात किया जा सकता है। आज के माहौल में ऐसी कृतियों का महत्व इसलिए भी है क्योंकि 'काव्य की मूल प्रकृति' से हम एकाकार होते हैं। ऐसी श्रेष्ठ काव्यकृति के लिए डॉ. चातक को अनेकशः बधाई। उनके निरामय जीवन हेतु, अनेक मंगल भावनाएं।

डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'
7 च 2 जवाहर नगर जयपुर– 30204
फोनः0141–2650937
मोः 9414829376

इदं राष्ट्राय

श्री उमेश कुमार चौरसिया द्वारा लिखित नाटक

प्रकाशक– साहित्यागार–पृष्ठ : 98, मूल्य रु. 200/–

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सर संघचालक स्व. श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर के जीवन पर आधृत **'इदं राष्ट्राय'** नाटक यद्यपि अंकों में विभाजित नहीं हैं परन्तु इसकी विषयवस्तु को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने की प्रकृति कुछ ऐसी हैं कि इसे एकांकी नहीं कहा जा सकता। यह एक पूर्ण नाटक है। श्री गुरुजी के जीवन को व्यक्त करने वाला यह पहला हिन्दी नाटक है जिसको लिखते समय नाटककार की दृष्टि मंचन पर पूरी तरह केन्द्रित रही है परन्तु मंच का पूरा अनुभव रखने वाला यह लेखक उसमें उलझा नहीं है। उसका सहज भाव से निर्वाह करते हुए लेखक ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा और श्रम सामग्री के संकलन, उसके नियोजन और नाटक में प्रयोजन की सिद्धि पर लगाया है।

नाटक की विशेषता यह है कि इसमें श्री गुरुजी के जीवन में ऐसे महत्वपूर्ण प्रसंगों का चयन किया गया है जो एक ओर तो उनके वैयक्तिक जीवन और घटनाओं का परिचय देते हैं– जैसे विवाह प्रस्ताव की अस्वीकृति, पिता जी माता जी की मृत्यु, स्वयं की बीमारी, केन्सर की शल्य क्रिया के बाद भी निरन्तर प्रवास, स्वामी अखरनन्द जी द्वारा दीक्षा, संघ कार्य की जीवन कार्य के रूप में स्वीकृति, अंतिम समय में प्रार्थना करते हुए देह त्याग पर 'भारतमाता की जय' का उच्चारण आदि। दूसरी ओर यह सभी प्रसंग कुछ इस प्रकार संगुम्फित किए गए हैं कि इनके माध्यम से संघ का इतिहास अपनी सभी प्रमुख घटनाओं के साथ व्यक्त होकर संघ के तत्व ज्ञान को भी उद्घाटित करते हैं। संघ का प्रारम्भ, अंग्रेजों द्वारा लगाया गया प्रतिबंध, डॉक्टर जी का अंतिम सन्देश व मृत्यु, श्री गुरुजी का सरसंघचालक बनना, गाँधी हत्या के आरोप में कांग्रेस सरकार द्वारा प्रतिबंध, गुरु जी की गिरफ्तारी, आंदोलन, विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना, डॉक्टर जी की प्रतिमा का अनावरण, संघ शिक्षा वर्गों का निरन्तर प्रवास और अन्त में संघ कार्य का सातत्य और उसका सार/घटनाओं का चयन और संघेतिहास के इस समन्वय ने एक ऐसी कृति को जन्म दिया है जो संघ से अपरिचित के लिए तो ज्ञानवर्द्धक है ही परन्तु सतत संघ कार्य में मग्न स्वयं सेवकों के लिए चिन्तन में प्रवृत्त होकर संघकार्य के तत्वज्ञान को जीवन में उतारने के लिए प्रवृत्त करता है।

डॉक्टर जी के स्मृति–मंदिर के उद्घाटन के अवसर पर उनके विषय में श्री गुरुजी के ये शब्द–''तत्व रूप बने पार्थिव शरीर के चिन्तन एवं आराधना से तत्व का ही चिन्तन और आराधन होता है।'' (पृष्ठ 68) तथा अपने स्वास्थ्य के विषय में अपने चिकित्सक से कहे गए श्री गुरु जी ये शब्द–''मनुष्य कितना जिया, इसकी अपेक्षा कैसे जिया इसका अधिक महत्व है। मेरी परमात्मा से यही प्रार्थना है कि जीवन के अंतिम क्षण तक वह मुझसे मेरा जीवन कार्य करा ले।'' (पृष्ठ 62) उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं जो 'इदं राष्ट्राय' को सार्थक करता है।

सम्पूर्ण नाटक इस बात पर तो निरन्तर बल देता है कि संघ कार्य जीवन कार्य है–''शरीर संघ का काम करते–करते ही छूटने वाला है। इसके लिए विश्रान्ति विष के समान है। (2.78) परन्तु यह कार्य है क्या, इसके विषय में श्री गुरु जी का निद्वन्द्व कथन इस प्रकार प्राप्त होता है–''समाज के पुनरुत्थान के लिए सत्प्रवृत्ति के बीज बचाकर रखने पड़ते हैं। इन बीजों की रक्षा का काम संघ का है।'' (पृष्ठ 84) संघ के प्रेरणा में चलने वाले विविध क्षेत्रीय कार्यों के विषय में नाटक में गुरू जी का यह वाक्य प्राप्त होता है। ''संघ कार्य का कोई अनुपूरक, परिपूरक नहीं है। संघ अपने आप में परिपूर्ण है।'' (पृष्ठ 74) ''वह (संघ) स्वयं प्रत्यक्ष कुछ नहीं करता परन्तु राष्ट्रहित के सभी कार्यों का और संस्थाओं का वह पूरक अवश्य रहता है।''

मंच की दृष्टि से नाटक बिना किसी ताम-झाम के सामान्य सामग्री के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके मंचन में Light and shade का नियोजन पर्याप्त कौशल की मांग करता है। पार्श्व से उपस्थित किये गए कथन यद्यपि संख्या में भी अधिक होने के साथ-साथ लम्बे भी हैं परन्तु मंचन करते समय का अनुभव उनकी संख्या और आकार भी नियोजित कर सकता है। भाषा की कोई समस्या नहीं है।

जिन्होंने श्री गुरू जी को देखा है या उनके सम्पर्क में रहे हैं उनके लिए तो यह नाटक उनके जीवन और चरित्र का पुनः प्रत्यक्षीकरण करने वाला है। लेखक ने कहीं भी हलकी भावुकता का परिचय न देते हुए अनुभूति के स्तर को बनाये रखा है। और अन्त में श्री गुरू जी के दो शब्द-''अपना कार्य राष्ट्र पूजक है, यह ध्येय पूजक है, व्यक्ति पूजा का उसमें कोई स्थान नहीं।.. सब छोटे-बड़े स्वयंसेवक बन्धु वरिष्ठ जनों के मार्ग दर्शन में संघ कार्य की पूर्ति हेतु कर्मा, वाचा, मनसा जुटे रहेंगे। और हमारा कार्य शीघ्र लक्ष्य पूर्ति कर सकेगा। भारत माता की जय।

डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ
75/70 मानसरोवर, जयपुर
मो : 8764295011

सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के सम्बन्धों का उदात्तीकरण

जिज्ञासा, कवयित्री : उर्मिला किशोर, प्रकाशकः तुलसी मानस संस्थान, जयपुर,

पृष्ठ : 110, मूल्य : रु. 100/-

कविता मानव मन की भावमयी अभिव्यक्ति है। भाव जब चिन्तन की गम्भीरता से किसी सत्य के अन्वेषण का आधार बनते हैं, तब जिज्ञासा का आविर्भाव होता है, यह जिज्ञासा ही ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा या किसी रहस्यमय सत्य का अनुसंधान और अन्वेषण बनती है किन्तु इस ज्ञान प्राप्त करने की अदम्य आकांक्षा का कविता में रसमय सृजन सहज और सरल नहीं होता। विदुषी डॉ. उर्मिला किशोर ने अपनी प्रज्ञा के प्रकाश में सांख्य दर्शन जैसे गम्भीर विषय को भी कल्पना और प्रतिभा से समन्वित करके जीवन का काव्य बना दिया है। उनका खण्ड काव्य जिज्ञासा इसका प्रमाण है जिसमें उन्होंने प्रकृति और पुरुष के सम्बन्धों से उद्भूत विश्व प्रपंच के प्रायः सभी व्यवहारों को कविता के स्वरों में सृजित करने का प्रयत्न किया है जो भावों का उदात्तीकरण है।

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल मुनि कहे जाते हैं। कपिल का यह नाम उपनिषद (श्वेता 05/2) भगवद्गीता (10/6) और महाभारत के शान्ति पर्व में तथा अन्यत्र भी आदर से लिया गया है। उन्हें ईश्वर की विभूति भी कहा गया है। डॉ. किशोर ने महाराज मनु की पुत्री देवहूति के सृष्टि के रहस्य को जानने की जिज्ञासा से इस कथा के कथानक को प्रारम्भ किया है, जो उनके पुत्र कपिल के द्वारा विस्तार से बतायागया है। अपनी भूमिका में कवयित्री ने कहा है कि ''प्रकृति पुरुष की सन्निधि से इस संसार का सृजन करती है। ये चर-अचर सब प्रकृति की रचना है। येवन, पर्वत, ये सागर, पशु, पक्षी, नर वानर सब प्रकृति की रचना है। प्रकृति और पुरुष दो स्वतंत्र शक्तियाँ हैं। इनके ही संयोग से सृष्टि की उत्पति होती है। प्रथम प्रधान तत्व प्रकृति है। यही सृष्टि का आदि कारण है।

इस कथानक में कर्दम ऋषि और उनकी पत्नी तथा उनके पुत्र तथा उनके गार्हस्थ जीवन का रसमय वर्णन हुआ है। वन प्रौतर में रहते हुए ऋषि और उनकी पत्नी का तथा पुत्र का शील-सौंदर्य और वात्सल्य से युक्त काव्य चित्र उपस्थित किया गया है। नैसर्गिक दृश्यों का प्रकृति के सौंदर्य का तथा उनके जीवन पर प्रभाव का भी सुन्दर वर्णन हुआ है। ऋतु वर्णन, प्रकृति का सम और सौम्य रूप तथा मनुष्य का प्रकृति को आक्रोशित कर (18) देने पर रौद्र रूप भी इस काव्य का विषय बना है। जनसंख्या विस्फोट (19) सृष्टि का विकास, ग्राम नगर और मानव समाज का विकास (22) महाप्रलय आदि का जिज्ञासा सम्पूरित वर्णन भी इस लम्बी कविता में है। प्रकृति के आक्रोश का वर्णन करते हुए

कविता की ये पंक्तियाँ आज की प्रकृति का ही वर्णन लगती हैः-

अब भी रूठी मानिनी मही,
विक्षुब्ध बात के चक्रों से
है दुखित स्खलित भूधर से,
ज्वाला मुख के विस्फोटों से।।

देवहूति ने अपने भाई उत्तानपाद के द्वारा किये जा रहे विकास के प्रयत्नों का वर्णन करते हुए यह भी कहा है-

मेरे भाई उत्तानपाद
प्रियव्रत दोनों निर्माण निरत
देते जन उनको साधुवाद।
नदियों का मार्गन, नियमन वे
करते रहते हैं सुधी सदा।
सातों दीपों की धरती का
सोचा करते विकास बहुधा।

वह उषा काल का शुभ मुहूर्त ही था जब ''बरसा प्रातः का अरुण रंग, आगई उषा ले ज्योति कलश, तब गा रहे चहक कर पक्षी गण, शुभ गान किसी मंगल के वश'' और तब शुभ शकुनों के साथ मनु प्रस्थान कर रहे थे। पुत्री के मंगल कारज के लिए। इस स्थान पर कविता अनेक मनोहर सुन्दर और भावी सफलताओं का संदेश बनकर भावाधिक्य से हृदय हारी बन गई है। इस वन पथ पर अग्रसर मनु और देवहूति का शुचिता समन्वित मधुर काव्य निर्मित हुआ है। इस स्थान पर सुरम्य परिवेश को अनेक पशु-पक्षियों, वृक्षों, लताओं और वनवासी स्त्री-पुरुषों के सान्निध्य ने और भी सुरम्य बना दिया है, जो शब्द के मधुर अर्थ-संयोग से स्थान सुषमा का रम्य वर्णन बन गया है। पुष्करिणी में गज की जल क्रीड़ा का गज शिशु का वात्सल्य मय सहज वर्णन तो और भी मनोमय काव्यानन्द सृजित करने की कला बन गया है।

रूप और गुण वर्णन की ये पंक्तियाँ ऐन्द्रिय बोध के चाक्षुष और श्रावण प्रत्यक्षों का ललित विस्तार कही जा सकती हैं, जिनमें प्रिय को सम्बोधित करते हुए कहा गया है-

तुम रूपवती चन्दा सी हो हो कमल सदृश्य हीं कोमल भी,
शुचि सौम्या, मधुर भाषिणी तुम फिर धैर्य विनय गुणवाली भी।
मैं हूँ कृतज्ञ उस प्रभु के प्रति, सब माँति श्रेष्ठ पत्नी पाकर,
जिसने तुम को ऐसा रचकर, उपकार किया मेरे ऊपर।।

अपने सभी कर्तव्यों को सम्यक निभाकर जब- अनेक प्रस्थानों से होते हुए कर्दम मुनि गार्हस्थ जीवन को त्याग कर ब्रह्म जिज्ञासा हेतु संन्यास लेकर चले गये, तब एक दिन कपिल मुनि ने माता की जिज्ञासा को उत्तर देते हुए बताया कि माता! यह शरीर बनता है, बीस चार तत्वों से मिलकर, पच्चीसवां पुरुष चेतन है, भ्राजित इन तत्वों के ऊपर। माता! ये चौबीस तत्व हैं, मूल प्रकृति महतत्व बुद्धि या। अहंकार, मन फिर ज्ञानेन्द्रियां, पाँच, पाँच ही हैं कर्मेन्द्रियाँ।

और आगे कविता में सांख्य दर्शन में प्रयुक्त गूढ़ शब्दों को सहज, सरल भाषा में वर्णित करते हुए यह भी कहा है- जितने भी प्रबुद्ध जन जग में जिज्ञासाशील सहज हैं। और सहजता से जो विश्व में व्याप्त सृष्टि के रहस्य का तत्व ज्ञान प्राप्त करना चाहते है उन्हें देहहूति के समान ही साधना और जिज्ञासा के द्वारा ज्ञान के प्रकाश का साक्षात्कार हो सकता है।

'जिज्ञासा' एक पौराणिक विषय वस्तु पर आधारित कथा काव्य है, जिसमें कवयित्री ने रसात्मक प्रबंध रचना को पद्यबद्ध कथा में एकात्मक अन्विति के साथ घटना-प्रसंग और परिस्थिति के अनुकूल चरित्र चित्रण के साथ सृजित करने का प्रयत्न किया है। काव्य हेतु और काव्य प्रयोजन भी हृदय और वृद्धि के समन्वय से आधुनिकता का संस्पर्श करते हुए मानवीय गरिमा के अनुकूल कहे जा सकते है। भाषा भावों के अनुरूप आधुनिक और सर्वसामान्य के लिए सुबोध है। किन्तु विषय तो गम्भीर है ही अतः दार्शनिक तथ्यों और सत्यों को जानने के लिए पाठकों को सांख्य दर्शन के लिए प्रयुक्त शब्दावली का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

जीवन के अनुभवों पर आधारित यह काव्य कृति माधुर्य, सुकुमारता तथा प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। लावण्य तथा अभिजात्य गुणों का भी इसमें समावेश हुआ है।

डॉ. सूर्य प्रसाद शुक्ल, डी. लिट्
सी-2-दर्शनपुरवा कानपुर-203012
मो : 9839202823

कुसुमार्चन : एक दृष्टि निक्षेप

(डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' को दिया गया अभिनन्दन ग्रन्थ)

जैसा कि स्पष्ट है कुसुमार्चन, ख्यातनामा साहित्यसेवी, शिक्षाविद्, योग प्रवीण डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' के व्यक्तित्व और कृतित्व को अभिनन्दित करने वाला एक महनीय सारस्वत प्रयास है। पर ग्रन्थ की समग्र संयोजना की भावभूमि से प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ प्रकारान्तर से डॉ 'कुसुम' के माध्यम से उन जीवन मूल्यों का अभिनन्दन है जिनकी समाज के लिए परमावश्यकता है। आज की विपर्यस्त सामाजिक स्थितियों में जीवन-मंगल के अभिप्रेत मूल्यों का जिस क्षिप्रता से क्षरण हो रहा है उसे यहाँ बताने की शायद आवश्यकता नहीं है। स्वार्थपरता, आत्मकेन्द्रित-क्षुद्रता, मानसिक संकीर्णता, साम्प्रदायिक-धर्मान्धता, ऐन्द्रिक चेतना-बहुलता आदि जैसी दुष्प्रवत्तियों ने व्यष्टि और समष्टि की समरसता और पारस्परिक समीकरण को ध्वस्त कर दिया है। उदात्त जीवन शैली का स्थान एक अनुदात्त जीवन शैली ने ले लिया है। जीवन, चिन्तन, मनन और सर्जना में सर्वत्र सत्यं शिवं सुन्दरम् की आदर्शत्रयी तिरोहित होती जा रही है। परिणामतः सामाजिक पट का ताना-बाना छिन्न-भिन्न होता जा रहा है और हम वक्त के कारवां को गुजरता देख रहे हैं, सिर्फ उसका गुबार ही खड़े-खड़े देखने को मजबूर हैं। ऐसी स्थिति में 'कुसुमार्चन' उन विलुप्त प्राय जीवनमूल्यों की नुमायन्दगी करता प्रतीत होता है जिनकी पुनर्स्थापना से सामाजिक क्षेम और लोकमंगल की भित्ति पुष्ट हो सकती है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का स्वप्न मानव जीवन में साकार हो सकता है। लोक मंगलोन्मुखी स्वतंत्रचेता मन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की दिश में उन्मुख होकर मानव कल्याण के पथ पर प्रशस्त हो सकता है। करुणा, मैत्री, मुदिता, भ्रातृत्व, अहिंसा, क्षमा जैसे मानव सुलभ गुणों के क्रमिक विकास से ही हमारा वर्तमान तो सुरक्षित रहेगा ही, भविष्य भी निरापद बन सकेगा। ऐसा विश्वास है कि कुसुमार्चन सकारात्मक परिवर्तन-व्यक्ति से समाज तक की प्रोज्ज्वल दिशाओं के मुक्त द्वारों की भूमिका तैयार कर सकेगा। प्रस्तुत ग्रन्थ की सर्जना में निरत ग्रन्थकार, सम्पादक, विशिष्ट लेखक तथा अन्य सभी हितेच्छु इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए अशेष साधुवाद के पात्र हैं। आशा है कुसुमार्चन अपनी अभीप्सित सार्थकता प्राप्त करेगा।

रामलक्ष्मण गुप्त
सम्पादक, तुलसी सौरभ

पत्र-प्रतिक्रियाएँ

तुलसी सौरभ के 'फरवरी-मार्च, 2017' अंक के संदर्भ में कुछ शब्द भेज रहा हूँ। आशा है, स्वीकार करने की कृपा करेंगे। अंक पूर्व अंकों की भाँति ही अच्छा, उद्देश्यपूर्ण एवं उपदेश व संदेश पूर्ण है। सर्वप्रथम में 'संपादकीय...' जो हिन्दी-अंग्रेजी के वर्ण संकरीय प्रेम के विरुद्ध लिखा गया है, के लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। इस दूरदर्शनी, इंग्लिश दिखावे से सम्मोहित, आधा तीतर-आधा बटेर वाली भाषा से हिन्दी से वास्तव में बहुत खतरा है। हँस या कौआ कोई भी जब दूसरे की चाल चलने लगता है, तो अपनी चाल भी भूल जाता है।

लेखों में सर्वश्री देवदत्त शर्मा का 'शबरी के राम' प्रभुदयाल मिश्रा का 'उद्धव गीता की भूमिका' तथा डॉ. सूर्यकान्त बाली के लेख की जितनी प्रशंसा की जाये कम है। आशा है उनकी लेखनी से निसृत ऐसे ही और लेख भी पढ़ने को मिलेंगे। सभी कविताएँ भी प्रासंगिक एवं भक्ति भाव से भरी हुई हैं।

ओमप्रकाश मंजुल, पीलीभीत

नई साज-सज्जा और आकर्षक रंग योजना से युक्त, तुलसी सौरभ' का रामनवमी विशेषांक प्राप्त हुआ। आवरण-पृष्ठ तीन पर आपका राम की चरण पादुकाओं को ले जाता हुआ श्रद्धा मग्न चित्र यह स्पष्ट करता है कि आपकी कर्मठता आस्था की कितनी गहराई से जीवन-रस प्राप्त करती है।

रघुनाथ प्रसाद सर्राफ का लेख बाली के प्रश्नों का राम द्वारा जो उत्तर दिलाता है उसमें राम का राष्ट्र-चिन्तन, राज्य-चिन्तन और धर्म-चिन्तन वाल्मीकि रामायण के किष्किंधा काण्ड के वार्तालाप को अपनी प्रतिभा से राष्ट्रीयता का सुन्दर मोड़ देता है। गोपाल जी गुप्त के लेख 'श्रीराम की ऐतिहासिकता' के कई अंश मैंने अलग से नोट कर लिए हैं। राम की जनतंत्रात्मकता के लिए सावरकर जी के वचन इतने सशक्त हैं कि उनका प्रतिवाद संभव नहीं है। पृष्ठ 41 पर मृदुल शर्मा की गजल राम के रूप में इतनी रंग गई है कि 'गजल' शब्द अपनी इस्लामिक प्रकृति खो बैठा है।

एक सुन्दर प्रस्तुति करने के लिए पुनः बधाई।

डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ, जयपुर

तुलसी सौरभ का फरवरी-मार्च, 2017 का अंक प्राप्त हुआ। डॉ. दुर्गाचरण मिश्र, देवदत्त शर्मा, डॉ. मराल, चिराग एवं विशेषकर डॉ बाल्नी के आलेखों ने प्रभावित किया। काव्यधारा में विमल, यायावर, ज्ञानवती सक्सेना, प्रमोद कुमार ने ध्यान आकर्षित किया। हिन्दी को लेकर लिखा संपादकीय सटीक व प्रासंगिक है।

आनन्द बिल्थरे, रामनगर, बालघाट

श्रीराम चरण पादुका चित्रांकित बहुवर्णी आवरण, सज्जित तुलसी सौरभ रामनवमी विशेषांक हस्तगत हुआ। शब्द-शब्द नमनीय-मननीय। पत्रिका का ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश सुखद-मंगलकारी एक से एक बढ़कर रचनाएं-जैसे भक्तिमण्डित ऋचाएँ स्वीकारें आत्मीय शुभकामनाएँ।

'तुलसी सौरभ विटप को लगा ग्यारहवां वर्ष।
पठन-मनन से दे रहा, शब्द-पुष्प नवहर्ष।
'तुलसी सौरभ' पत्रिका 'तुलसी-मनका' रूप।
श्रीराम पद कञ्ज में, उपजे भक्ति अनूप।
'राम-नाम' औषधि-सुलभ, 'दस रुपए' में मात्र।
चलती है 'दो माह' तक, कौन न बने सुपात्र।
'तुलसी सौरभ' में छपे, 'रचना' वही अनन्य।
भक्तिभाव में डूबकर, लेखक होता धन्य।
मूल्यवान निधि रूप में, 'तुलसी सौरभ' अंक।
चिरनवीन रहकर सदा, देता शान-निशंक।
'राम भक्ति' की पीठिका, 'तुलसी सौरभ' नाम
शब्दमयी विग्रह दिखें, जिसमें 'तुलसी-राम'।

गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र' लखनऊ

रामनवमी विशेषांक प्राप्त हुआ। सभी आलेख पढ़े। श्री रघुनाथ प्रसाद सराफ के आलेख में बाली एवं श्रीराम का संवाद पढ़ा। ज्ञानवर्द्धक है। श्री कमला देव

तिवारी द्वारा अपने आलेख में श्रीराम की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। विचार श्रेष्ठ है। डॉ. सराफ द्वारा रामराज्य की आवश्यकता पर बल दिया गया जो आज के समय की महती आवश्यकता है। श्री देवदत्त शर्मा द्वारा लिखित निबंध में श्री राम जन्म भूमि मंदिर एवं बाबरी मस्जिद को लेकर जो भी विचार दिये गये हैं वे सामयिक, सार्थक एवं विचारणीय हैं। उनके द्वारा बाबरनामा को आधार मानकर जो तर्क दिये गये हैं सौहार्द्र, समन्वय एवं शांति के लिये वे अत्यंत उपयोगी हैं। काश! बुद्धिजीवी हिन्दू एवं मुस्लिम वर्ग के लोग इसे समझने का प्रयास करें। यह अंक सभी दृष्टियों से अति श्रेष्ठ है। बधाई!

सनातन कुमार वाजपेयी, जबलपुर

'तुलसी सौरभ' की गरिमामयी दस वर्ष की सतत यात्रा पर सम्पादक मण्डल को कोटिशः बधाई। ग्यारहवें वर्ष का रामनवमी विशेषांक नए कलेवर में ठोस सामग्री के साथ आया है, अच्छा लगा। पत्रिका में एक-दो लेख को छोड़कर अधिकांश सामग्री ज्ञानवर्द्धक है। डॉ. गार्गीशरण 'मराल' व डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' के लेख भी शोध परक हैं। गौरीशंकर वैश्य विनम्र व डॉ. ओम प्रकाश गुप्त की कविताएँ अच्छी लगीं। डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' की कविताएँ समीक्षाएँ तुलसी सौरभ में प्रायः पढ़ता रहा हूँ।

डॉ. चन्द्रपाल शर्मा, पिलखुआ

'तुलसी सौरभ' का 'रामनवमी' विशेषांक प्राप्त हुआ। 'तुलसी सौरभ' पत्रिका अपने प्रकाशन के 10 वर्ष पूर्ण कर 11 वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। आपको व पत्रिका परिवार को हार्दिक बधाई एवं मंगलकामनाएं। 'तुलसी सौरभ' में 'श्री राम' बाबा 'तुलसी' व मानस को केन्द्र में रखकर ही प्रकाशनार्थ रचनाओं का चयन किया जाता हैं। आपका चिंतन सर्वथा उचित है कि इसमें अध्यात्म दर्शन, शास्त्र, संस्कृति, संस्कार, आदि विषय स्वाभाविक रूप से रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं।

'रामनवमी विशेषांक' में प्रारम्भ में राष्ट्रकवि स्व. मैथिलीशरण गुप्त का गीत बहुत मनमोहक है। वैसे तो सभी आलेख बहुत ज्ञानवर्द्धक व रोचक है, किन्तु श्री रघुनाथ प्रसाद सराफ, श्री देवदत्त शर्मा, डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय, पं. नवीन आचार्य, डॉ. सर्वोत्तम त्रिवेदी, श्री गोपाल जी गुप्त के आलेख अत्यन्त रुचिकर व ज्ञानचक्षु जाग्रत करने वाले हैं। काव्यधारा में श्री पद्माकर भट्ट का मंगलाचरण डॉ. ओमप्रकाश गुप्त, डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय, डॉ. मृदुल शर्मा श्री आनन्द बिल्थरे, कौशल किशोर, श्रीवास्तव की रचनाएं भक्ति-सागर में डुबकियां लगवाती हैं। डॉ. महावीर चंसौलिया द्वारा 'अवधराज' के अन्तर्गत दोहावलि में चक्रवर्ती सम्राट महाराजा दशरथ के शासन व राज्य सीमाओं आदि का रोचक परिचय दिया गया।

दीपक गोस्वामी चिराग, सम्भल, उ.प्र.

'तुलसी सौरभ' का अप्रैल-मई, 2017 अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद। इस रामनवमी विशेषांक को एक ही बैठक में आद्योपांत पढ़ गया। आज के उपभोक्तावादी युग में निरन्तर हो रहे नैतिक मूल्यों के क्षरण को रोकने में 'तुलसी सौरभ' जैसी आध्यात्मिक पत्रिकाओं की महती आवश्यकता है। लोकतंत्र को बचाने तथा सामाजिक, पारिवारिक समरसता को बनाये रखने के लिए राम के उदात्त चरित्र का अवगाहन करना परम आवश्यक है। रामनवमी का यह अंक अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैसे तो अंक के सारे आलेख शिक्षाप्रद हैं तथापि रघुनाथ प्रसाद सराफ एवं डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' के आलेख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। काव्य रचनाओं में डॉ. मृदुल शर्मा की दोनों रचनाओं ने मन मुग्ध किया। अन्य रचनायें भी अच्छी हैं।

राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन' रायबरेली

'रामनवमी विशेषांक' में रघुनाथ प्रसाद जी सराफ का लेख 'राम राष्ट्रहित नृपतनुधारी' लेख वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। वाल्मीकि ने रामायण में इस बिन्दु को राष्ट्रीय संदर्भ में उल्लेखित किया है जब राम बालि को कहते हैं कि इक्ष्वाकु वंश के अधीन सीमा रेखा पर उत्पातियों को दण्ड देने के लिए ही वे (राम) अयोध्या नरेश भरत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। रामराज्य किस रूप में आज

भी प्रासंगिक है, इस पर डॉ. गार्गीशरण मराल, रामकथा के विभिन्न पात्रों के चरित्र चित्रण के रूप में डॉ. राजबलि पाण्डेय तथा नवीन आचार्य के लेख प्रभावी हैं। कविता के माध्यम से कौशल राज्य का परिचय एवं वहाँ की आदर्श व्यवस्था का चित्रण डॉ. महावीर जी चंसौलिया ने सुन्दर ढंग से किया है।

देवदत्त शर्मा, अजमेर

तुलसी सौरभ का अप्रैल–मई 2017 का अंक प्राप्त हुआ। सभी लेखों में राम समाया हुआ है। राम के त्याग, तप तथा शक्ति का बड़ा रोचक चित्रण कमल देव त्रिपाठी तथा डॉ. राज बलि पाण्डेय ने किया है– पाण्डे जी ने उचित ही कहा है कि रामचरित हिन्दू जाति के लिए उच्चतम आदर्श है। काकभुशुण्डि जी की भक्ति बहुत सुन्दर है। उन्होंने 'मुनि दुर्लभ वर पायो देखो भजन प्रताप' जैसी अमूल्य निधि प्राप्त की यह रामनाम की महिमा है।

इन सब लेखों में 'राम राष्ट्र हित नृप तनु धारीं' लेख में रघुनाथ प्रसाद सर्राफ ने हिंसक तथा आतंकी तत्वों का उन्मूलन करके राष्ट्र की रक्षा के लिए बालि के वध को उचित सिद्ध किया है, जो बहुत ही विद्वत्तापूर्ण तथा ज्ञानवर्धक है। राम एक बहुत बड़ा अभियन लेकर चले हैं कि इस धरा को, भारत की पावनभूमि को निशाचरी आतंक से मुक्त कराना है। उनकी सारी रणनीति इस प्रकार बनाई गई कि यह अभियान पूर्णतः सफल हो, क्योंकि पराजय के लिए कोई रणनीति नहीं बनाता है। इस सारी योजना को सफल बनाने के लिए बालि का उन्मूलन अत्यावश्यक था, ऐसा सुधी लेखक ने बड़े सशक्त तर्क देकर सिद्ध किया है। बालि ने किसी धर्मशास्त्र का अध्ययन नहीं किया था क्योंकि कोई भी धर्मशास्त्र यह नहीं कहता कि आततायी तथा आतंकवादी का उन्मूलन करने से पूर्व उनको सूचना दें कि हम तुझे मारने आ रहे हैं, इधर से आएंगे, यह हथियार लाएंगे आदि–आदि। यह मूर्खों के मस्तिष्क में लिखा होगा जिन के बाप–दादा ने कभी युद्ध की योजना नहीं बनाई होगी। राम क्षत्री कुल के राजकुमार आरम्भ से ही मृग्या करना सीखते थे। अपने कठोर बाणों का जब प्रहार करते थे तो हिंसक जीव भागते थे और अन्त में वह शिकार को मारकर जब गुरू विश्वामित्र के सामने लाकर डालते थे तो गुरु उनकी प्रशंसा ही करते थे यह नहीं कहते थे कि इसको पीछे से क्यों मारा, शेर को, भेड़िए को रीछ आदि को यह क्यों नहीं कहा कि तुम हमारे सन्मुख आ जाओ। बालि के मर्दन पर जो छाती पीटते हैं कि उसको छुपकर क्यों मारा कल यह भी कहोंगे कि ओसामा बिन लादेन को रात्रि के समय ड्रोन से चुपचाप आक्रमण करके क्यों मारा, उसे दिन में मारते और कह कर मारते कि हम तुझे नष्ट करने के लिए ड्रोन भेज रहे हैं। पाकिस्तान के क्रूर गुण्डे जब कश्मीर में हमारे सैनिकों के सिर काट कर ले गए तो हमारी सेना ने उन पर आघात करके उनकी कमर तोड़ दी तो बालि कहेगा कि पहले नवाज शरीफ को टेलिफोन पर बताते कि हम रात को आक्रमण करके तेरी चौकियों को सबक सिखाने आ रहे हैं। ऐसी बातें मूर्ख किया करते हैं। बालि का वध राष्ट्र से आतंकवाद का सफाया करने के लिए जरूरी था इसमें कोई उचित–अनुचित का प्रश्न ही नहीं उठता। लेखक को इस के लिए साधुवाद है। राम के लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि था इसीलिए वह राष्ट्र नायक कहलाते हैं। अपने अभियान को सफल बनाने के लिए राम को जनमत भी जानना आवश्यक था। बनवासियों में भ्रमण करने वाली शबरी जो सेवा कार्यों के लिए ऋषियों के आश्रमों में भी जाती थी वह जनता की भावनाओं को भली–भाँति जानती थी। उसने राम को चेताया था कि–

पम्पा सरहि जाहु रघुराई।
तहं होइहि सुग्रीव मिताई।।

राम जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकते थे क्योंकि जनता के सहयोग से ही आसुरी शक्तियों को नष्ट करना था। बालि के पक्ष में जनमत नहीं था। अतः जनता की भावनाओं का आदर करते हुए सग्रीव से मित्रता ही कार्य की सफलता के लिए आवश्यक थी। यही नीति निपुणता है जिसके कारण सारे भालू बन्दरों ने राम को सहयोग दिया। ऐसे लेखों की आज बहुत आवश्यकता है। आप को इसके लिए बधाई है।

हिम्मत सिंह सिन्हा, कुरुक्षेत्र

स्वच्छता

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

स्वच्छता आदर्श का प्रतिमान है,
सभ्यता को नव दिया अनुदान है,
मन्त्र है आरोग्यता का अनुभवा–
सूर्य का तम पर किया सन्धान है।

स्वच्छता पावित्र का पर्याय है,
आचरण का गुरुकुली संकाय है,
विश्व विश्रुत वैद्य सुश्रुत के रचे
ग्रन्थ का पहला यही अध्याय है।

स्वच्छता सौन्दर्य का विन्यास है,
दुर्व्यवस्था से लिया संन्यास है,
सभ्यता की लेखनी द्वारा लिखा–
रूपधर्मी सांस्कृतिक इतिहास है।

स्वच्छता आलस्य का प्रतिरोध है,
दिव्य जीवन हेतु मौलिक शोध है,
लहलहाती पौध है औदात्य की–
विश्व को देवत्व का उद्घोष है।

स्वच्छता में देव का अधिवास है,
सन्त जन का अनुभवा विश्वास है,
सोच तक में व्यक्ति के हो स्वच्छता
श्रेष्ठ जीवन का यही विन्यास है।

सिविल लाइंस कोटा–324001
(राजस्थान)
मो: 9460570883

R.N.I. No. RAJHIN/2007/20777

जगत के स्वामी श्री राम

डॉ. प्रेम वाजपेयी

घट-घट में बसने वाले, माँ कौशल्या के राम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

जब-जब असुर बढ़े धरती पर, तुमने मानव रूप धरा।
असुरों का विनाश करके, देवों-संतों का कष्ट हरा।।
चौदह वर्ष बिताए वन में, भूल गए विश्राम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

माँ का जब आदेश मिला तो, राजमहल भी छोड़ दिया।
लखन-सिया संग वन में भटके, मोह का बंधन तोड़ दिया।।
राज-अयोध्या का छोड़ा, तुम बने तपस्वी राम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

एक अहिल्या शापित नारी, का तुमने उद्धार किया।
रावण-बध कर परम-धाम दे, रावण पर उपकार किया।।
अंत-समय जो तुम्हें पुकारे, ले जाते निज धाम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

तुमने अपना धर्म निभाकर, मानवता का ज्ञान दिया।
जग के आदर्शों-मूल्यों का, भी तुमने सम्मान किया।
कभी बने तुम परशुराम तो, कभी कृष्ण और राम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

कृपा बनाए रखना मुझ पर, मैं इक मानव अज्ञानी।
क्षमा करो मेरी त्रुटियों को, सदा रहा मैं अभिमानी।।
तुम हो पालनहार जगत के, तुम निर्बल के राम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

घट-घट में बसने वाले, माँ कौशिल्या के राम।
दशरथ नन्दन, तुम्हें समर्पित, मेरे कोटि-प्रणाम।।

87/192-ए, आचार्य नगर
कानपुर- 208003
मो: 91-9335475140

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक व मुद्रक राम लक्ष्मण गुप्त के लिये हरिहर प्रिन्टर्स, जे-97, अशोक चौक, आदर्श नगर, जयपुर से मुद्रित व 39, माथुर वैश्य नगर, टोंक रोड़, जयपुर से प्रकाशित। सम्पादक : **रामलक्ष्मण गुप्त,** मो. 9414052831 e-mail : rlgupta9@hotmail.com